Break The Rule Vol: II

ब्रेक द रूल

जिंदगी को अपनी शर्तों पर कैसे जियें

-जोगा सिंह
B.Sc, B.Ed, M.Phil (English)

© जोगा सिंह

(इस पुस्तक के सर्वाधिकार लेखक के पास सुरक्षित हैं. लेखक की लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक का किसी भी रूप में संग्रहण, रूपांतरण, अनुवाद, मुद्रण या प्रकाशन गैर कानूनी है.)

मूल्य : 299/- रूपए
प्रकाशक : स्वप्रकाशित
संस्करण : दूसरा संस्करण 2023
मुद्रक : अमेजन

विषय-सूची

किताब के बारे में.....4

असल आध्यात्मिक कौन है? 6

क्या आप एक रोबोटिक जीवन के शिकार हैं? 10

मेरी पत्नी के दिल में कौन रहता है? 25

हमारे जीवन में कोई नई सवेर क्यों नहीं हुई? 36

हम हमेशा कुछ बनने में क्यों लगे रहते हैं? 60

कैसे धर्म एक बिना दिमाग की भीड़ है?.....69

भारत में कोई खोज क्यों नहीं होती?..... 81

किसी दूसरे का अनुभव आपका नहीं हो सकता.....94

एक विदेशी खुद को ईमानदार क्यों नहीं मानता?..... 104

हमें क्यों महापुरुषों की हत्या कर देनी चाहिए? 119

आदमी की जिंदगी इतनी नाखुश क्यों है? 124

मानसिक गुलामी इतनी बुरी क्यों होती है? 153

आखिर आदमी जीने से इतना क्यों डरता है? 166

आखिर हल क्या है?.....183

लेखक के बारे में 193

किताब के बारे में

जिस किताब को आप इस समय पढ़ रहे हैं यह कोई सामान्य किताब नहीं है. यह किताब एक ऐसे बीज के समान है जिसमें एक विशाल वृक्ष छुपा हुआ है. जोगा सिंह जी ने किताब लिखकर हमें बीज उपलब्ध करा दिया है, अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम इसे खाद-पानी देकर एक विशाल वृक्ष बना पाते हैं या नहीं.

इस बीज में जिस वृक्ष की संभावना है वह इस युग की आवश्यकता है; हमारे समाज और हमारे निजी जीवन की आवश्यकता है.

मैं जोगा सिंह जी के संपर्क में फेसबुक के द्वारा आया था. इनके लेखों को पढ़ते हुए मैं इनकी धारदार लेखन शैली से प्रभावित हुआ. लेकिन उससे भी बड़ी बात यह थी कि वह सिर्फ बड़ी-बड़ी बातें लिख ही नहीं रहे थे बल्कि उनको अपने जीवन में जी भी रहे थे.

एक समय इनकी सेहत और आर्थिक स्थिति काफी खराब थी. उस मुश्किल दौर से जोगा सिंह जी जिन सिद्धांतों का पालन करके निकल पाए, यह पुस्तक आपको उन्हीं सिद्धांतों के बारे में बताएगी.

लेकिन इस पुस्तक में बताई गई बातों की सीमा रेखा सिर्फ इतनी ही नहीं है कि आप अपने निजी जीवन की समस्याओं को सुलझा पाएं, बल्कि यह पुस्तक एक बहुत बड़े सामाजिक बदलाव की पृष्ठभूमि तैयार करती है. यह किताब बहुआयामी उन्मुक्तता का एक अद्भुत दस्तावेज है.

जिस दौर में हम पहुंच चुके हैं वहां पर अब हमारे पास चुनाव नहीं है. अगर हमने समूचे सामाजिक ढांचे को बदलने के लिए कदम नहीं उठाए तो हमारा सर्वनाश निश्चित है.

मुझे बहुत खुशी है कि मुझे एक ऐसी पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का मौका मिल रहा है जो कि एक नए सार्थक युग के निर्माण की सामर्थ्य रखती है.

यह पुस्तक आपको अंदर तक झकझोर के रख देगी. इस पुस्तक को जरूर पढ़ें और मेरा दावा है कि पढ़ने के बाद आप अपने अंदर एक बदलाव महसूस करेंगे. व्यक्ति के अंदर बदलाव आने के बाद समाज में बदलाव आना बहुत दूर नहीं है. इस पुस्तक के लिए मैं जोगा सिंह जी को ढेरों शुभकामनाएं देना चाहूंगा ~**आलोक मिस्टिक**

असल आध्यात्मिक कौन है?

अगर एक पंजाबी और एक युरोपियन शिमला जाएंगे वो वहां क्या करेंगे? अधिकतर पंजाबी युवाओं के बारे में मैं अच्छे से जानता हूं इसलिए आपको बता सकता हूं कि वह वहां सबसे पहले एक महंगा होटल तलाशेगा और फिर वह अपना एक कमरा बुक करेगा. फिर नॉन-वेज़ का ऑर्डर देगा, छक कर महंगी शराब पिएगा और उसके बाद खूब दबा कर नॉन-वेज़ खाएगा और सो जाएगा. वह सुबह उठ कर वापिस घर चला जाएगा. धन की बर्बादी के साथ बस इतना ही था उसका भ्रमण और एंजॉय!

अब समझिए कि एक यूरोपियन वहां क्या करेगा?

वह वहां किसी पहाड़ की चोटी पर चढ़ जाएगा और वहां अपना टेंट गाड़ देगा. वह रात भर उस पहाड़ की चोटी पर बर्फीली हवाओं के संग रहेगा. इस बीच हो सकता है कि वहां बारिश भी हो जाए, तूफान भी आ जाए लेकिन वह हर चीज को एंजॉय करेगा. और सुबह सूरज की पहली किरण के साथ फोटो या वीडियो भी शूट करेगा.

इस बीच जो भी उसके पास खाने और पीने के लिए है उसी से काम चलाएगा. और हाँ, वहां खींचे फोटो या वीडियो को बेचकर वह अपने टूर का कुछ खर्चा भी निकाल लेगा. वहां अपनी हर गतिविधि में उसे जोखिम उठाना पड़ सकता है लेकिन वह उसके लिए मानसिक और शारीरिक रूप से तैयार हो कर आया है. अब ध्यान देने वाली बात यह है कि पंजाबी युवक के जीवन में सब कुछ पहले से ही निश्चित था.

जो पंजाबी युवक है उसने एक तरह के बने बनाए **रूल** के आधार पर अपना आनंद निश्चित किया था. उसकी जिंदगी में सब कुछ पहले से सेट था. कितना महंगा होटल लेना है? होटल उसके लिए कितना सुरक्षित है? कमरे में रूम हीटर है या

नहीं? बाथरूम में गर्म पानी आता है या नहीं? मेन्यू में से कौन-कौन सा खाना ऑर्डर करना है? सुबह ब्रेकफास्ट में क्या लेना है? और कमरा कितने बजे चेक आउट करना है? इत्यादि...

आपके जीवन में जब हर चीज निश्चित होती है तो आप उसी के मुताबिक चलते हैं, आप खुद को उससे अलग या बाहर नहीं निकाल पाते? जबकि पहाड़ की चोटी पर उस यूरोपियन की जिंदगी में कुछ भी निश्चित नहीं है. ज्यों ही वह यह फैसला करता है कि मैं होटल में न रह कर किसी पहाड़ की चोटी पर रहूंगा, तभी से उसकी जिंदगी में मुश्किलें बढ़ जाती हैं.

उसका दिमाग एक कमांडो की तरह चारों दिशाओं में दौड़ने लगता है कि कौनसी चोटी मेरे काम के लिए ठीक रहेगी? चोटी कितनी ऊंची होनी चाहिए? वहां कौन कौन सी मुश्किलें आएंगी और उन मुश्किलों का कैसे डट कर मुक़ाबला करना है? यूरोपियन के मन में तनाव पैदा होगा और उसको इसके लिए बहुत सोचना पड़ेगा. अब बताइये, कि आगे की तरफ कौन देख रहा है?

दूसरी तरफ, उस पंजाबी युवा के मन में कोई तनाव नहीं. वह रात भर नशे में रहेगा और उसे पता भी नहीं चलेगा कि वह कहां सोया हुआ है? जब वह होटल से निकलेगा तो उसे यह लगेगा कि कोई फायदा नहीं हुआ यहां आने का क्योंकि मुझे तो कोई नया अनुभव हुआ ही नहीं. कुछ भी हासिल नहीं हुआ. उसके जीवन में कुछ नया घटित नहीं हुआ, कोई नया विचार पैदा नहीं हुआ.

जबकि वहीं यूरोपियन को रात में इतने फैसले लेने पड़े, इतनी चुनौतियों का सामना करना पड़ा जिससे जीवन के प्रति उसकी नई समझ पैदा हो गई क्योंकि उसके आज के अनुभव बड़े ही अद्भुत रहे. उसने आज जीवन के प्रति एक नई खोज की क्योंकि वह पहले से ज्यादा बौद्धिक हो गया. उसके अंदर आत्मविश्वास, हौसला, निडरता जैसे गुणों की बढ़ोतरी हो गयी.

दूसरी ओर, जिसको होटल में शराब का नशा हुआ था, उसका वह नशा सुबह उतर गया और थोड़ी आत्मग्लानि भी हुई होगी.

तो फिर बताइए कि यहां असल आध्यात्मिक कौन है?

यूरोपियन को जो नशा हुआ उसका वह नशा कभी नहीं उतरेगा. अब आप ही बताओ कि धार्मिक ग्रंथों वाला आनंद उस यूरोपियन ने लिया या पंजाबी युवक ने? बताओ कि आत्मिक और आध्यात्मिक विकास किसका हुआ होगा? यूरोपियन का या पंजाबी युवक का? पंजाबी युवक अपने शरीर तक ही सीमित रहा क्योंकि वह सिर्फ अपने शरीर के लिए खा रहा था जबकि यूरोपियन के संघर्ष ने उसके अंदर के बोध को जागृत किया.

तो फिर पदार्थवादी कौन हुआ और आध्यात्मिक कौन? दोनों में से अध्यात्म के पनपने के अवसर किस में ज्यादा हैं? मेरे हिसाब से, अध्यात्म का मतलब आत्मा का ज्ञान, खुद के ज्ञान से है. अब खुद का ज्ञान होटल में एंजॉय करने से ज्यादा होगा या फिर पहाड़ की चोटी पर संघर्ष करने से? संघर्ष के बिना कभी अध्यात्म और विज्ञान नहीं पनप सकता.

अध्यात्म क्या है? किसी भी कार्य और उसके प्रबंधन को लगातार बेहत्तर करते रहने की स्थिति को अध्यात्म कहते हैं. लेकिन हम लोग बेहत्तर करने की बजाय उसे दोहराने लगते हैं. इससे जीवन में मौलिकता खत्म हो जाती है और जीवन एक कर्मकांड में बदल जाता है. फिर यह कर्मकांड एक पाखंड में बदल जाते हैं और यही पाखंड आने वाली पीढ़ियों के लिए एक परंपरा बन जाते हैं.

हम यूरोपियन पर पदार्थवादी होने का आरोप लगाते हैं जबकि सच्चाई यह है कि हमारी संघर्ष और खुद के ज्ञान में कोई रुचि नहीं. हम सिर्फ आत्मा-परमात्मा का ढोंग करते हैं. आज जितने भी विकसित देश हैं वो धार्मिक पाखंडों से दूर हो चुके हैं, वहां चर्च में जाने वाले लोगों की संख्या दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है. बहुत

से चर्चों को तो स्कूलों में बदला जा रहा है. विकसित देशों में अब आपको नास्तिकों की संख्या ज्यादा मिलेगी.

आपको हैरानी होगी कि इन विकसित देशों ने ज्यों ही धर्म को तिलांजलि दी, या यूं कहिए कि धर्म को निजी मामला बनाया तभी से वो धार्मिक हो गए. जो घटना हजारों सालों में नहीं घट पाई थी वह सिर्फ जीवन में एक **ब्रेक** देने से घटित हो गयी.

जिन अंग्रेजों ने हमारे देश के इंसानों पर इतने जुल्म ढाये, हमारे देश के लोग आज उन्ही के देश में बसना अपना सौभाग्य क्यों समझते हैं? क्योंकि वे आज मानवता के हितैषी बनने के राह पर एक अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं. उन लोगों ने इस दुनिया को पदार्थ के जरिए बेहत्तर तरीके से समझा है.

इस जीवन को हम और भी बेहत्तर तरीके से समझ सकते हैं अगर हमारे सांसारिक लक्ष्य बड़े हों. मान लो एक आदमी नें एक साइकिल खरीदनी है और दूसरे नें एक करोड़ की कार तो कौन ज्यादा मेहनत करेगा? किसकी जिंदगी में संघर्ष ज्यादा होगा? किसके अंदर नीडरता, हौंसला, आत्मविश्वास, अच्छे प्रबंधन के गुण ज्यादा पनपने की उम्मीद रहेगी?

क्या आप एक रोबोटिक जीवन के शिकार हैं?

एक कैदी का आजीवन कारावास समाप्त हुआ तो उसे जेल से बाहर भेजा जाने लगा. दो संतरी उसे प्रवेश द्वार तक छोड़ने के लिए आए. प्रवेश द्वार पर पहुंचने पर दोनों संतरियों में से एक ने आज़ाद हुए कैदी से पूछा, “आज तो तुमको नया जीवन मिला है, आजीवन कारावास से मुक्ति मिली है. अब कैसा लग रहा है बाहर की खुली हवा में सांस लेकर?”

कहते हैं कैदी ने चारों ओर देखा, एक लंबी सांस खींची और उन्हें एक अद्भुत जवाब दिया, “हे संतरी, मुझे तुम दोनों जहां से लेकर आए हो वहीं छोड़ दो, मैं अब उसी जगह ठीक हूं.” जबकि वह आज से बाहर की दुनिया में अपना दूसरा जीवन शुरू करने वाला था, लेकिन उसका दुर्भाग्य... वह तो जेल के अंदर का गुलामों सा जीवन जीने का आदी हो चुका था. बाहर की खुली हवा अब उसे रास नहीं आ रही थी.

ताज़ी हवा में भी उसका दम घुटने लगा. ऐसा सुनकर आपको अजीब लगता होगा, लेकिन जेल के अंदर कुछ खास तरह की आदतों के आदी हो जाने पर ऐसा हो सकता है. इसमें कोई आश्चर्य नहीं... अब उसे लगता है कि वह जेल के अंदर बाहर से ज्यादा बेहतर रहेगा. क्योंकि अंदर उसे तय वक़्त के अनुसार सब कुछ मिला हुआ था.

जेल के अंदर प्रतिदिन उसे एक निश्चित समय पर नाश्ता व भोजन दिया गया, सुरक्षा दी गयी, कभी कभार सप्ताहांत में जेल से बाहर भी ले जाया गया. पहनने के लिए जेल की एक खास पोशाक दी गयी. वहां उसके जीवन के सभी आयामों को तय कर दिया गया था. इन सब के लिए उसे ज़रा भी नहीं सोचना पड़ता था.

सब कुछ अपने आप चलता रहता था. अंदर इन सब की कोई चिंता नहीं रहती थी. उसे कुछ नहीं करना पड़ता था. उसके साथ बस ज़िंदगी घट रही थी. वह

खुद कोई निर्णय नहीं ले रहा था. जब कोई निर्णय नहीं था, तो कोई ज़िम्मेदारी भी नहीं थी. उसके लिए तो यह काफी सुकून की जिंदगी थी. तीस साल के लंबे वक़्त ने उसे इस आराम का आदी बना दिया था जहां उसने वर्षों तक अपनी सोच का उपयोग ही नहीं किया था.

इस बात को सभी जानते हैं कि जब हम अपने शरीर के किसी हिस्से का उपयोग नहीं करते, तो वह कमजोर होता चला जाता है. उदाहरण के लिए, यदि हम साल-दो-साल के लिए अपनी आंखें बंद कर लेते हैं तो अपनी दृष्टि खो देते हैं. हम अंधे हो जाते हैं. इसी तरह, यदि हम साल-दो-साल तक अपने पैरों का उपयोग नहीं करते, तो हमारे पैर चलने की शक्ति खो देते हैं.

इसी तरह, अंदर उस कैदी को तीस वर्षों तक अपनी विचार शक्ति का उपयोग करने की जरूरत नहीं पड़ी. परिणामस्वरूप, उसकी विचार करने की शक्ति घटती चली गई और अंततः वह इतना कमजोर हो गया कि बाहर की ताज़ी हवा भी उसे दमघोंटू प्रतीत होने लगी. बाहर का खुलापन उसके लिए अब धमकी जैसा था.

अब जरा एक गृहिणी के बारे में सोचिए! वह रोज के कामों को कैसे निपटाती है? उसे रोज़मर्रा के कामों के लिए भी पूरी योजना बनानी पड़ती है. कल क्या खाना बनाना है? बाज़ार कब जाना है? कपड़े कब धोने है? वगैरह वगैरह.... ऐसी बहुत सी गतिविधियां हैं जो उसे हमेशा सक्रिय रखती हैं. लेकिन फिर भी उसके रोज के कामों में से कुछ काम बाकी रह ही जाता है और उसे उस पर पुनःविचार करना पड़ता है. उसके पास हमेशा कुछ काम निपटाने के लिए पड़ा रहता है.

इसी सब से उसके मस्तिष्क का अच्छा खासा व्यायाम हो जाता है. जबकि इस सब के बीच उसे कई तरह की निराशा भी घेरती है. लेकिन फिर भी वह सारा दिन सक्रिय रहती है. क्योंकि उसके जीवन ने उसे सिखाया है कि दैनिक चुनौतियों को कैसे पूरा करना है?

जबकि, उस कैदी के पास परेशान होने के लिए कुछ भी नहीं था. और जब वह विगत तीस वर्षों से अपने मस्तिष्क का उपयोग ही नहीं कर रहा था, तो वह अक्षम हो चुका होता था. यही है एक तरह का रोबोटिक जीवन जिसका शिकार हम सब बन चुके होते हैं और हमें इसका पता भी नहीं चलता.

क्या हमारा जीवन रोबोटिक हो चुका है? इसे जांचने के लिए खुद पर एक सरल सा परीक्षण कीजिये.

बहुत बारीकी से चिंतन करें कि हम जिन ऋषियों, संतों और किताबों का अनुसरण कर रहे हैं, क्या वो हमारे माता-पिता की पसंद हैं या हमारी? यदि वे हमारे माता-पिता की पसंद के हैं, तो यह मान लीजिये कि हम नकारात्मकता, सुस्ती और बोरियत का शिकार हो चुके हैं. क्योंकि अब हम उन चीजों पर निर्भर होकर सिर्फ उन्हें दोहरा रहे हैं.

अपने पहनावे, दाढ़ी, केश और अपने विश्वास प्रणाली की जांच करिए और पूछिये अपने आप से कि क्या ये आपके माता-पिता और आपके समुदाय के साथ मेल खाते हैं? यदि हाँ, तो फिर आप भी एक कैदी की तरह जेल की कोठरी में रह रहे हैं. जांचिए कि आपकी शादी कैसे हुई थी? यदि वो पारंपरिक मानदंडों के अनुसार थी तो फिर आप एक आदतन रवैये के शिकार हो चुके हैं.

साथ ही इसकी भी जांच कीजिए कि कौन-कौन से महान लोगों की तस्वीरें आपके घर की दीवारों पर लटकी हुई हैं? यदि वे सब आपके समुदाय की हैं, तो समझिए कि यह मर्ज बहुत खतरनाक हो चुका है. क्योंकि यहां धर्म ही सबसे बड़ा अपराधी है. यह आपकी सोच को कुछ विशेष तरीकों से आदतन करवा देता है और आपको पता ही नहीं चलता. यह आपको हर अवसर के लिए अपने पक्के और अंतिम नियम प्रदान कर देता है.

उदाहरण के लिए, यदि आपकी अपने जन्मदिन या छुट्टियों को मनाने की योजना है या आप विवाह करना चाहते हैं, तो धर्म आपको पहले से ही तय किए गए सारे

अनुष्ठान प्रदान कर देता है. अब आप मजबूर हैं ऐसे **रूल्स** को फॉलो करने के लिए जो कहीं से तार्किक नहीं कहे जा सकते.

अगर हम कार या नया घर खरीदने की योजना बनाते हैं तो इन सभी के लिए धर्म का अपना एक निश्चित एजेंडा है. यदि हम सर्वशक्तिमान की पूजा करना चाहते हैं तो धर्म ने उन सभी के लिए निश्चित अनुष्ठानों को पहले से हमारे लिए तैयार किया हुआ है. समाज के पास हमारी हर समस्या का समाधान है पर फिर भी समाज की आज तक कोई समस्या हल नहीं हुई. समस्याएं सुलझने के बजाय उलझी हुई हैं. ऐसा क्यों हुआ? ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि हमारा समाज ज्ञान को ज्यादा अहमियत देता है.

जबकि जिंदगी का आखिरी लक्ष्य ज्ञान नहीं है बल्कि एक्शन है. जितना आदमी को ज्ञान ज्यादा होगा उतना ही उसमें एक्शन लेने की क्षमता क्षीण होती जाएगी. उतना ही उसमें इच्छा शक्ति कम होगी. आपने देखा होगा जितना आदमी ज्यादा पढ़ा लिखा होगा उतना ही वह जीवन में कम कामयाब होगा. वह फिर सिर्फ जिंदगी भर एक छोटी सी नौकरी करता रहेगा. ऐसा आदमी कभी बड़ा इतिहास नहीं रच सकता.

जबकि जितने भी दुनिया में कामयाब आदमी हैं वो ज्यादातर दस या बारह ही पढ़ें होंगे. ज्यादा पढ़े-लिखे आदमी में एक्शन लेने का मादा कम हो जाता है.

भारत में जी.एस.टी. और नोटबंदी हुई, किसी ने विद्रोह नहीं किया क्योंकी यह मामला पढे-लिखे लोगों से संबंधित था. सारे काम-धंधे चौपट हो गए लेकिन कोई नहीं बोला. लेकिन जब तीन कृषि बिल आए तो किसानों ने बहुत बड़ा आंदोलन खड़ा कर दिया. ऐसा इसलिए हुआ क्योंकी किसान कम पढ़ा-लिखा होता है.

धर्म क्यों फेल है? क्योंकि धर्म एक ज्ञान का भंडार है. गुरुओं, फकीरों और देवताओं ने जीवन के हर पहलू का निचोड़ निकाल दिया और सारे सत्य ग्रंथों में लिख दिए. अब लोगों को यह भ्रम हो गया कि हमारे महापुरुषों ने सारे सत्य जान लिए,

इसलिए अब हमें कुछ नहीं जानना. इसीलिए, लोग दिन-रात कीर्तन, भजन, प्रवचन किए जा रहे हैं. वो बस अपने गुरुओं की कहानियों को रट्टा लगाए जा रहे हैं लेकिन एक्शन कोई भी नहीं ले रहा.

काश गुरुओं, फकीरों ने कुछ न लिखा होता और लोगों के पास भजन, कीर्तन के लिए कुछ माल ही न होता. जब कुछ न होता तो लोग एक्शन लेने के लिए मजबूर हो जाते. फिर शायद हर कोई अपना सत्य ढूंढने निकल पड़ता. अब तो हर सत्य को पहले से ही ढूंढ लिया गया है. बस इन्हीं को दोहराते रहना है. धार्मिक आदमी को हर चीज का ज्ञान होता है इसलिए वह कभी एक्शन नहीं लेता. जब हम जान ही गए तो फिर किसी तरह का जोख़िम लेने की क्या जरूरत है? जिऑफ़रे चोसर कहता है कि जान जाना, परिचित हो जाना घृणा पैदा करता है.

यहां तक फिर हम जिंदगी भर अपने खुद के धर्म के ग्रंथ को भी नहीं पढ़ते. हम ग्रंथों के लिए जान दे भी सकते हैं और ले भी सकते हैं, पर हम इन्हें कभी पढ़ते नहीं. पढ़ते क्यों नहीं? क्योंकि हमारे दिमाग में पहले ही दुनिया भर का भूसा भरा हुआ है.

ऐसे ही जब आदमी बहुत कुछ जान जाता है तो वह फिर जीवन में एक्शन नहीं ले पाता. जब सब कुछ जान ही गए तो फिर एक्शन क्यों लेना? समस्या यह है कि आदमी बहुत कुछ जानता है, इसलिए शायद वह कुछ भी नहीं जानता. अगर हम उस सबसे खाली हो जायें जो हम जानते हैं तो हमारा मन खाली स्लेट की तरह हो जाएगा.

अब इस तरह का खाली या अज्ञानी मन वास्तव में सब कुछ जानता है. इसलिए हमें कुछ हासिल नहीं करना, वरना जो आज तक हासिल किया उसको गंवाना है. और हमारे भरे मन को खाली करने के लिए 'ब्रेक द रूल' एक सर्वोत्तम थेरपी है.

एक अज्ञानता तो वह है जब हमें सारी दुनिया का ज्ञान है पर हम फिर भी कुछ नहीं जानते. इस तरह की अज्ञानता बहुत खतरनाक है क्योंकि इस तरह की अज्ञानता कुछ नहीं जानती. एक दूसरी तरह की अज्ञानता है जो आप 'ब्रेक द रूल' थेरपी से मन को खाली करके हासिल करते हैं. इस तरह की अज्ञानता को 'अर्जित अज्ञानता' कहते हैं. इस तरह की अज्ञानता कुछ नहीं जानती लेकिन फिर भी सब कुछ जानती है.

जितना हम कम जानते हैं, उतना और ज्यादा जानने की संभावना बनती है. इसलिए मार्क टवाइन कहते हैं कि अगर हमारे अंदर अज्ञान और आत्म-विश्वास हो तो कामयाबी पक्की है. एक बच्चे में जो अज्ञानता होती है वह अर्जित नहीं होती, वह स्वाभाविक होती है. हमें अब इस इग्नोरेंस को सतत प्रयास से हासिल करना है क्योंकि प्रयास से हासिल की गई अज्ञानता धोखा नहीं खाएगी.

यानि कि हमें बच्चे की तरह अनजान और भोला नहीं बनना है जिसे संकट और धोखे का बिल्कुल पता नहीं चलता.

एक्शन कौन सा?

यह जो हम स्कूल में पढ़ते हैं, सुबह उठते हैं, खाना खाते हैं, काम पर जाते हैं यह एक्शन नहीं होता. यह तो एक प्रकार की कंडीशनिंग है, यह तो एक नकल है. इसका मतलब, जो और लोग कर रहे हैं वही हम कर रहे हैं.

अब शादी का जो फैसला है वह भी एक्शन नहीं है क्योंकि यह एक सामाजिक परंपरा है जो हमने निभाई है. यह हमारा फैसला नहीं है. यह कोई ऐसा फैसला नहीं कि जैसे हमें भूख लग जाये और हम खाना खाएं. नहीं, शादी की भूख हमारे अंदर से पैदा नहीं हुई. यह तो एक रस्म है जो हम निभा रहे हैं.

हम इसको यूं समझें. हम रोटी कब खाते हैं? समय देखकर या भूख देखकर? जाहिर है सभी समय देखकर खाना खाते हैं कि चलो लंच का वक्त हो गया लंच करते हैं. अब बताओ, वक्त का खाने से क्या लेना देना? खाने का संबंध तो भूख

से होना चाहिए था लेकिन हमने उसको समय से जोड़ दिया. यानि कि एक गलत रूल या परंपरा बना डाली.

खाना तो तब खाना चाहिए जब भूख लगी हो. बहुत सारे लोगों को भूख लगती ही नहीं क्योंकि वो हमेशा वक्त देखकर खाना खाते हैं. अब जब भूख ही मर गयी तो पीछे क्या बचा? फिर हमारी सेहत अच्छी हो ही नहीं सकती. क्योंकि अच्छी सेहत के लिए खूब भूख लगना नितांत आवश्यक है.

जब हम सेहत के साथ इतना बड़ा खिलवाड़ कर रहे हैं तो यही कारण है हमें हर आदमी बीमार मिलेगा. हर आदमी को आज शुगर और बी.पी. की बीमारी है. अब हर आदमी को यह ज्ञान तो है कि भूख लगने पर ही खाना लेना चाहिए लेकिन फिर भी आदमी खाना गलत समय पर खा रहा है. यानि कि ज्ञान तो है पर एक्शन गलत है. यानि कि कुछ कर नहीं सकते. कैसे एक गलत व्यवस्था एक **रूल** का रूप ले लेती है?

हमें हर तरह का ज्ञान है कि कैसे अगर पर्यावरण को नुकसान पहुंचाया जाए तो यह मानवता के लिए घातक सिद्ध हो सकता है लेकिन इस ज्ञान के बावजूद हम आज तक हमारे पर्यावरण को बचा नहीं सके.

ऐसे ही हमें हर तरह का ज्ञान है कि हम रोगी कैसे होते हैं और इन रोगों से कैसे बचा जाए. लेकिन इस सारे ज्ञान के बावजूद हर आदमी बीमार है.

इसी तरह से सभी लोगों को मालूम है कि धर्म कर्म क्या है. सभी को मालूम है कि ईमानदारी, सच्चाई कोई अच्छी चीज होती है लेकिन फिर भी भारत जैसे देशों में जेलों,कोर्टों, थानों में पैर रखने तक के लिए जगह नहीं.

विज्ञान नें आदमी को आज हर सुख-सुविधा प्रदान कर दी लेकिन आदमी सुखी तो प्रतीत नहीं होता. कुल मिलाकर हमारा सारा ज्ञान किसी काम नहीं क्योंकि यह जो गलत हो रहा है उसको यह रोक नहीं पा रहा.

इसी तरह के सवालों को हम इस किताब में खंगालेंगे.

इस का मुख्य कारण है कि भूख की तरह ही आदमी के जीवन में हर जगह कुछ **रूल** तय हैं. जैसे वह पहले खुशी मनाने के लिए कोई एक दिन तय करता हैं और फिर उस दिन खुश होता है. जैसे इंतजार करेगा कि कब दिवाली, दशहरा आए और वह खुश हो. दिवाली आती है तो वह दीप जलाता है, पटाखे फोड़ता है, मिठाइयां खाता है. लेकिन यह तो उलट हो गया. वास्तव में उसे उत्सव तब मनाना चाहिए जब वह खुश हो.

अब मान लो आज आप बहुत खुश हो तो आपने अपने घर को सजा दिया और दीप जलाए. आपने मिठाइयां बांटी. अब लोग तो पूछेंगे कि आप मिठाइयां क्यों बांट रहे हो? अगर आपने कह दिया कि आज मैंने दीप इसलिए जलाए हैं क्योंकि आज मैं बहुत खुश हूं तो देख लेना लोग आपको पागल समझेंगे.

यानि कि कोई दीवाली नहीं, दशहरा नहीं फिर आप खुश कैसे हो सकते हैं? खुश होने के लिए तो पहले से एक दिन निश्चित होना चाहिए. बिना दिन फिक्स किए आप खुश हो ही नहीं सकते. और आपको खुश भी तब होना है जब सब खुश हों. आप अकेले भी खुश नहीं हो सकते.

यानि कि खुश होने के लिए भी आपको एक **रूल** में फिट होना है. कैसे सामाजिक **रूल्स** की वजह से आदमी अपनी मौलिकता खो देता है. आदमी हमेशा दुखी ही रहता है क्योंकि उसका यह भी एक सीखा हुआ व्यवहार है. वह शुरू में ही बीस-पचीस साल तक दुखी रहता है क्योंकि उसको स्कूल जाना पड़ता है. स्कूल में एक बच्चा हमेशा दुखी ही रहता है.

फिर पांच-सात साल कॉलेज में पढ़ता है. यहां भी वह न चाहते हुए ही जाता है. हमारी सारी शिक्षा रट्टे पर आधारित होती है. इसलिए कहीं कोई सुकून नहीं. इन सालों में बहुत बोरियत होती है. अगर एक भी दिन छुट्टी हो तो बहुत मजा आता है.

फिर शादी हो जाती है तो सिर्फ दो साल ही मजा आता है. फिर यह शादी भी एक कर्मकांड बन जाती है. जल्दी ही आदमी इससे भी ऊब जाता है और बाकी बचा काम धर्म पूरा कर देता है. यानि कि सब कुछ हमारे लिए फिक्स है कि कब आपने शिक्षा लेनी है, कब शादी करनी है, कब बच्चे पैदा करने हैं, कब दिवाली मनाकर खुश होना है?

ऐसे ही हम सभी विषयों में कर रहे हैं. जैसे शादी करना, नौकरी करना, प्यार करना, बच्चे पैदा करना ये सब हमारी खुद की कभी जरूरत नहीं रहती. नहीं, ये सब हम सामाजिक रस्मों को निभाते हैं. ये सब कुछ ऐसे **रूल** हैं जिनमें हम फिट होते चले जाते हैं. यानि कि सब कुछ पहले से ही तय है कि हमें क्या करना है? यह तो एक कोल्हू के बैल की जिंदगी है. क्योंकि जैसा हमारे पूर्वजों ने किया वैसा हम किये जा रहे हैं.

हमारा पचानवे प्रतिशत जीवन बाहर से ऑपरेट होता है. हमारे खुद के फैसले सिर्फ पांच प्रतिशत ही होते हैं.

एक्शन तब होता है जब हम प्रचलित धारणा के विरुद्ध जाते हैं और जब हमारे कदम किसी एक नई दिशा में जाते हैं. जब हम सही दिशा पकड़ते हैं तो हमें अहसास होता है कि जो मैं आज तक माने बैठा था वह तो सरासर झूठ था.

जैसे मेरे कॉलेज में यह रिवाज है कि हर छोटा अधिकारी अपने बड़े अधिकारी को नमस्ते करता है. जैसे फ़ोर्थ क्लास कर्मचारी थर्ड क्लास कर्मचारियों को नमस्ते करते हैं और थर्ड क्लास प्रोफेसरों को नमस्ते करते हैं और प्रोफेसर प्रिंसिपल को नमस्ते करते हैं. प्रिंसिपल भी तो किसी को करता ही होगा.

अब यह सारी प्रक्रिया बोरियत के सिवाय कुछ नहीं देती क्योंकि यह सब एक रूल के अधीन होता है. यानि कि हर आदमी एक औपचारिकता निभा रहा होता है. इस तरह की गतिविधि को हम अगर हजार साल तक भी करते रहें तो भी इसमें से कोई अच्छी अनुभूति नहीं पैदा होगी.

क्यों? क्योंकि हम सभी औपचारिकताएं निभा रहे हैं. यह नमस्ते करना हमारा अपना फैसला नहीं. यह महज एक सामाजिक रिवायत है. ज्यों ही हम अपने से बड़े अधिकारी को देखते हैं, हमारा सिर स्वतः ही उसके आगे झुक जाता है.

इसमें कोई सोचने की जरूरत ही नहीं पड़ती. यानि कि यह एक रोबोटिक जिंदगी है. वास्तव में हमारी सारी जिंदगी ही रोबोटिक है. ये प्यार करना, शादी करना, नौकरी करना हर चीज रोबोटिक है. यही कारण है आदमी बीमार है और अस्पतालों में इतनी भीड़ है. सामाजिक तौर पर भी आदमी बीमार है क्योंकि हमारी कोर्टों और जेलों में पैर रखने की जगह भी नहीं.

आदमी बीमार इसलिए है क्योंकि उसको बहुत ज्यादा ज्ञान है लेकिन वह एक्शन नहीं ले पा रहा. यानि कि हर आदमी एक ही लकीर को ही पीटे जा रहा है. किसी को यह मालूम नहीं कि उसको वास्तव में जीवन में क्या चाहिए? मैं इस विषय में थोड़ा उलट करता हूं. मैं, चाहे कोई चपरासी है या चौकीदार है, सबको नमस्ते करता हूं.

मैं इंतजार नहीं करता कि वे मुझे पहले नमस्ते करें. नहीं, मैं पहले ही उनको नमस्ते कर देता हूं. इससे हम दोनों में अच्छा अहसास पैदा होता है. यानि कि हम हजारों सालों से एक दूसरे को नमस्ते करते आ रहे हैं लेकिन इससे कोई नई और सुखद अनुभूति नहीं पैदा होती. किसी की भी नमस्ते हमारे शरीर के रासायनिक समीकरणों को प्रभावित नहीं करती.

क्यों? क्योंकि हम नमस्ते एक **रूल** के अंतर्गत करते हैं. हमें जब भी कोई मिलता है तो स्वतः नमस्ते मुंह से निकल जाती है. यह एक यांत्रिक प्रक्रिया है. इससे जीवन बदलता नहीं. लेकिन जब मैं अपने चौकीदार को नमस्ते करता हूं तो उसको एक नई अनुभूति मिलती है.

क्योंकि हर किसी को वही नमस्ते करता है लेकिन जब मैं, एक प्रोफेसर, उसको नमस्ते करता हूं तो मेरी नमस्ते उसे हिलाकर रख देती है. फिर वह पहले जैसा

नहीं रहता. वह बदल चुका होता है. याद रहे, एक दूसरे को बदलने की क्षमता सिर्फ और सिर्फ आम आदमी में होती है. लेकिन हम उल्टा बदलाव की उम्मीद गुरुओं और फकीरों से रखते हैं जो न तो आज तक हुआ और न ही आगे संभव है.

ग्रेटोंगार्बो एक सेलून पर मर्दों की दाड़ी पर साबुन लगाती थी. कहते है वहां एक दिन एक आदमी शेव कराने आया. उसने ग्रेटोंगार्बो को देखकर कहा, "मैडम अगर आपको बुरा न लगे तो एक बात कहूँ?" वह बोली, "हां, कहो, क्या कहना है?"

वह कहने लगा कि मैडम आप बहुत सुंदर हो. मैंने दुनिया में बहुत सुंदर औरतें देखी हैं लेकिन मैंने आप जैसी सुंदर औरत आज तक नहीं देखी." कहते हैं ग्रेटोंगार्बो आगे चल कर एक बहुत बड़ी मॉडल बनी. यानि कि हमारी एक छोटी सी टिप्पणी भी किसी की जिंदगी को बदल सकती है. लेकिन हम तो दिन-रात धर्म, अधर्म, आस्तिक, नास्तिक, समाजवाद, पूंजीवाद पर चर्चा किए जा रहे हैं जबकि जो करना है वह तो निहायत ही आसान है.

हम सभी बदलना तो चाह रहे हैं लेकिन हम बदलाव गलत जगह और गलत लोगों से उम्मीद कर रहे हैं. देखिए, बदलाव आएगा तो सिर्फ और सिर्फ एक आम आदमी से; और हम तब तक एक आम आदमी से नहीं जुड़ेंगे जब तक हम अपने गुरुओं, फकीरों, महापुरुषों से नहीं टूटते.

एमर्सन कहता है कि हमें महान नहीं होना, हमें साधारण होना हैं. वास्तव में साधारण होना ही महानता है. हमारे सारे महापुरुष अति साधारण लोग थे लेकिन हमारी मूर्खता नें उन सबको महान बना दिया और आज परिणाम यह है कि आज हम खुद अपने लिए सबसे बड़ी अड़चन बन गए हैं.

जैसे नमस्ते करना मात्र एक औपचारिकता है. यह जीवन में कोई नई हलचल पैदा नहीं करता. ऐसे ही सारे धर्म महज एक औपचारिकता हैं. यही कारण है कि किसी

धर्म के आज तक कोई सकारात्मक परिणाम नहीं आए. धर्म किसी का भ्रम है और किसी का यकीन. धर्म का मतलब है पीछे देखना, गाड़ी पिछले शीशे से देखकर चलाना. यह पीछे देखने का **रूल** तोड़ना होगा.

आप देख लेना जब भी हम एक निश्चित सामाजिक रिवायत के उलट काम करेंगे तो अच्छा लगेगा. क्योंकि जो पहले कर रहे थे, वह कोई हमारा फैसला नहीं था. वह मात्र एक औपचारिकता थी. जबकि जीवन अलग होने में निहित है.

अब अगर किसी को भी पूछ लो तो सभी यही कहेंगे कि कोई छोटा बड़ा नहीं होता. अगर कोई छोटा बड़ा नहीं होता तो हमारे से छोटे पद के आदमी को देखकर हमारा सिर क्यों नहीं झुकता? क्या चपरासी को मिलते ही आपने कभी उसकी तरफ हाथ बढ़ाया, मिलाने के लिए? कभी नहीं! यानि कि जो हम विश्वास करते हैं या जितना भी हमें ज्ञान है, वह कचरा है.

यानि ऐसा ज्ञान लेकर क्या करना जिसके बाद गुलामी पक्की हो जाए और गुलामी की पहचान गले का पट्टा लोगों की काबलियत का सबूत बन जाए. परिणाम और नियंत्रण विहीन ज्ञान से दूर होने पर आत्मविश्वास स्वतः आ जाता है. उसके बाद कुछ भी करना असंभव नहीं रहता.

वास्तव में हमारा सारा एक्शन हमारे विश्वासों के विरुद्ध खड़ा हैं. यह मायने नहीं रखता कि हम क्या सोचते हैं? मायने यह रखता है कि हम करते क्या हैं? असली चीज जिंदगी में है एक्शन. मान लो मुझे कोई ज्ञान नहीं, लेकिन मैं ऐक्शन बहुत लेता हूं तो इससे बहुत सारा डाटा पैदा होगा. जब मैं खुद फैसले लूंगा, तब जो नयी जानकारी पैदा होगी वही मेरा असली ज्ञान होगा.

हमारा ज्ञान वह है जिसे हमने अपने अनुभव से जाना है. असली ज्ञान वह है जो हमारे अनुभव से पैदा हुआ. लेकिन यह जो सारा ज्ञान है जिससे हमारा दिमाग पहले से ही भरा पड़ा है हमारा अपना नहीं है. नहीं, यह अतीत से आया है. और

जो ये लोग विश्वास करते हैं कि कोई छोटा बड़ा नहीं होता, ऐसे लोगों का व्यवहार एकदम उलट होता है. वास्तव में हम सब ढोंगी हैं.

अनुभव हमेशा बुरे अनुभवों से आता है और इस नए अनुभव से हमारे पुराने आदर्श बदल जाते हैं. बुरे अनुभव तब पैदा होते हैं जब हम लकीर से हटकर फैसले लेते हैं और यही 'ब्रेक द रूल' है. हमारी रोजाना की नमस्ते कोई नया अहसास या नई अनुभूति नहीं पैदा करती क्योंकी हम मात्र एक औपचारिकता निभा रहे हैं. ऐसे ही सारा धर्म मात्र एक औपचारिकता है.

एक होता है व्यवहारिक ज्ञान जो व्यवहार से आता है और दूसरा होता है थोपा गया ज्ञान. धर्म एक थोपा गया ज्ञान है. अल्बर्ट आइंस्टीन कहते हैं कि मेरे लिए धर्म एक मानवीय कमजोरी के इलावा कुछ नहीं.

धर्म केवल दैविक शक्ति में विश्वास का नाम है. धर्म का सच्चाई, ईमानदारी, वास्तविकता व इंसानियत से कोई संबंध नहीं.

कोई अपने से छोटे को नमस्कार नहीं करता लेकिन विश्वास सभी करते हैं कि कोई छोटा बड़ा नहीं होता. ऐसा ही वह विश्वास एक ढोंग है जब हम कहते हैं कि सब धर्म एक समान हैं. अरे भाई, अगर सब धर्म समान हैं तो हमारे घर में किसी और धर्म के गुरु की फोटो क्यों नहीं लगी?

हमारी जितनी भी धार्मिक अवधारणाएं हैं ऐसे ही झूठ हैं. जैसे हम कहेंगे कि हम अतीत से बहुत कुछ सीखते हैं, हम महापुरुषों से बहुत कुछ सीखते हैं, हम इतिहास से बहुत सीखते हैं. ऐसे बहुत से झूठ हैं जो हम इस किताब में आगे चलकर बेनकाब करेंगे.

सारा धर्म ऐसे ही झूठ का एक पुलिंदा है. क्यों? क्योंकी धर्म एक अतीत में जीना है. धर्म में सिर्फ विश्वास होता है लेकिन आदमी का व्यवहार ठीक उसके विश्वासों के उलट होता है. हर आदमी को बहुत ज्ञान है, पर एक्शन शून्य है. और याद रहे

जितना ज्ञान कम होगा उतना एक्शन लेने की क्षमता उग्र होगी. इसीलिए हम अतीत का **रूल** तोड़ने के लिए कहते हैं.

धर्म में सिर्फ विश्वास है क्योंकी वहां स्पष्टता नहीं. 'ब्रेक द रूल' जीवन में स्पष्टता पैदा करता है और जब जीवन में स्पष्टता आ जाती है तो फिर विश्वास की जरूरत नहीं रहती.

विश्वास की हमारे जीवन में सिर्फ तब तक जरूरत होती है जब तक हमारे जीवन में स्पष्टता नहीं होती. जब जीवन में क्लेरिटी यानि स्पष्टता आ जाती है तो फिर किसी प्रेरणा की भी जरूरत नहीं रहती. जैसे हमें रोज नौकरी पर जाने के लिए खुद को प्रेरित करना पड़ता है लेकिन अगर हमें अपना काम अच्छा लगने लगे तो हमें खुद को कभी प्रेरित करने की जरूरत नहीं पड़ेगी.

उदाहरण के तौर पर, ज्यादातर दलित सवर्ण जातियों पर जातिवादी होने का इल्जाम लगाते हैं लेकिन दलितों की खुद की हजारों जातियां हैं और उनमें भी आपस में भेदभाव है और वो एक दूसरे को नीचा भी समझते हैं. माना कि दलित गरीब थे लेकिन वे दुनिया के सामने खुद का एक जाति रहित समाज देकर एक नया उदाहरण तो पेश कर ही सकते थे.

यानि कि दलित भी वही कर रहे हैं जो हिन्दू या सिख कर रहे हैं. वो भी उतने ही भ्रष्ट और बेईमान मिलेंगे जितने सिख या हिन्दू हैं. यानि कि जीवन में क्लेरिटी नहीं है, यानि कि हमें यह नहीं मालूम कि हम जो भी करते हैं वह क्यों करते हैं?

यानि कि कोई भी, चाहे वो हिन्दू हो या दलित हो या सिख हो, अपनी खुद की सोच को स्पष्ट रूप से नहीं देख पा रहा और इस तरह से हम सभी एक भ्रम का शिकार हैं.

सवाल यह है कि कोई नई शुरुआत क्यों नहीं हो सकती? अतीत ही नदी की तरह क्यों बहता चला जाता है. पुराने को **ब्रेक** क्यों नहीं लगता? पुराना ही नए के रूप

में आगे क्यों आता चला जाता है? वही पुराने सामाजिक पैटर्न क्यों बार बार सामने आते हैं? हमारी सोच किसी नई दिशा में क्यों नहीं जाती?

इन्हीं सवालों को 'ब्रेक द रूल' खंगालता है कि हजारों सालों की मानवता के बाद भी आदमी का कोई नया चेहरा सामने क्यों नहीं आया?

इतने गुरु आये, फ़क़ीर आये लेकिन आदमी हजारों साल पहले वाले आदमी जैसा व्यवहार ही क्यों करता है? कोई नया चरित्र क्यों नहीं पनपता? कोई नयी सोच क्यों पैदा नहीं होती? आदमी पीछे ही क्यों देखता है, आगे क्यों नहीं देखता? पुरानी सड़ी-गली प्रथाओं को **ब्रेक** क्यों नहीं लगती? क्यों दलितों और सिखों का भी हिन्दुओं जैसा ही चरित्र है?

जब अलग तरह का इंसान होने की अपार संभावनाएं हैं तो आदमी पुराने गले-सड़े अतीत का आलिंगन ही क्यो करता है? इसलिए हर धर्म में सुधार की जरूरत है. क्या गलतियों को सुधारना गलत है? नहीं ना! तो फिर सोचो और समझो, गलतियों को ठीक करो. तो फिर हजारों सालों से चली आ रही मानसिक गुलामी की रीति को भी सुधार की बहुत जरूरत है. समय के हिसाब से हमें अपनी मानसिकता में बदलाव करने की जरूरत है.

मेरी पत्नी के दिल में कौन रहता है?

क्या मुझे पता है कि मेरी पत्नी के दिल में कौन रहता है? शायद मैंने यह सवाल खुद से कभी किया ही नहीं क्योंकि मैंने यह मान लिया है कि उसके दिल में सिर्फ मैं रहता हूं. क्योंकि अगर शक हुआ तो उसके साथ एक क्षण भी जीना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन है. इसलिए यह सवाल ही न किया जाए तो बेहतर है.

ऐसे ही, हम कभी भी भगवान के वजूद पर सवाल नहीं उठाते क्योंकि जिसके सहारे मेरा सारा खानदान हजारों सालों से जीता आया है उसके बिना अब जीना कैसे संभव हो सकता है? अतः कोई सवाल ही न उठाया जाए तो बेहतर है. यही नज़रिया हमारा नानक, बुद्ध, राम और भगवत गीता के बारे में है. लोग कभी इनके बारे में कोई गहन अध्ययन नहीं करते क्योंकि अगर अध्ययन करने से कोई नई सच्चाई सामने आ गयी तो फिर जियेंगे कैसे?

इसी संदर्भ में यह कहा भी गया है कि अज्ञानता एक वरदान है. यही वजह है लोग कभी अज्ञानता से बाहर नहीं आना चाहते. यहां तक कि जिसने जितनी ज्यादा डिग्रियां ले रखी हैं, जिसने जितने ज्यादा ग्रंथ पढ़ रखे हैं वह उतना ही ज्यादा अंधकार में डूबा हुआ है.

अब मेरी पत्नी के दिल में पता नहीं कौन है लेकिन मैंने एक विश्वास पाल लिया कि वह अब तन-मन से मेरी हो गयी है. लेकिन इसके उलट भी थोड़ा सोच कर देख लेना चाहिए. क्या पता उसका पहला प्यार कौन रहा होगा? फिर किसी दूसरे से भी प्यार हुआ जो आंखों ही आंखों में खत्म हो गया होगा. फिर कोई तीसरा भी रहा होगा जिससे शायद वह कभी प्यार का इज़हार ही नहीं कर पाई हो.

एक सर्वे के अनुसार, हर इंसान शादी से पहले औसतन छः बार प्यार करता है. असली प्यार तो वही है जो शुरू में किसी और से हो गया. मेरे साथ जो हुआ वह तो हो सकता है एक मजबूरी हो, महज एक औपचारिकता हो. सुना है, ज्यादातर

शादियां तब होती हैं जब इंसान बहुत निराश हो जाता है. जब जिंदगी में कुछ नहीं हो रहा होता तो वह सोचता है चलो शादी ही कर डालो. तो ऐसे में मेरे हिस्से कितना प्यार आया होगा, आप समझ ही सकते हैं? मैं यह कह रहा था कि हमें कुछ पता नहीं कि हमारी पत्नी के दिल में कौन रहता है?

मेरे एक दोस्त का दोस्त उसके घर में आता जाता था और धीरे धीरे उसकी पत्नी और उसके दोस्त के आपस में शारीरिक संबंध स्थापित हो गए. धीरे धीरे उसे शक हुआ तो नौबत तलाक तक आ गयी और जब बाद में बच्चों का जेनेटिक टेस्ट हुआ तो वो भी उसके खुद के नहीं थे. वो भी उसके दोस्त के निकले.

एक बार किसी पश्चिमी देश की सरकार ने हर आदमी का जेनेटिक रिकॉर्ड रखने की सोची. जब सारा जेनेटिक सर्वे किया गया तो चौंकाने वाले तथ्य सामने आए. सर्वे में यह पाया गया कि साठ प्रतिशत बच्चे अपने माँ बाप की औलाद हैं ही नहीं. सरकार यह देखकर घबरा गई और वह रिपोर्ट हमेशा के लिए दबा दी गयी.

जब मुझे यह नहीं पता कि मेरी पत्नी के दिल में कौन रहता है, जब मुझे यह नहीं पता कि मेरा बच्चा मेरा है या पड़ोसी का, तो मुझे यह कैसे पता चल गया कि एक भगवान या अल्लाह भी होता है और यह कि धरती उसने बनाई है?

मतलब मुझे यह पता है कि धरती किसने बनाई लेकिन मेरे बच्चों को किसने बनाया यह आपको और मुझे पता नहीं. क्या पता वो मेरे पड़ोसी के हों. हमारे पैरों में कितना अंधकार है लेकिन हमारी निगाहें आकाश के पार टिकी रहती हैं. खाने को रोटी नहीं, रहने को छत नहीं लेकिन बात करेंगे अध्यात्म की, परमानंद की....

किसी नें ठीक कहा है कि यानि हम सब कागज की कश्ती में सवार हैं लेकिन आने वाले कल के लिए परेशान हैं. जैसे हमें यह तो मालूम नहीं कि मेरे बच्चों का बाप कौन है पर हर वक़्त यह सोचकर परेशान रहते हैं कि इस दुनिया को किसने बनाया? भगवान क्या है, आत्मा क्या है, मरने के बाद मेरा क्या होगा?

बहुत धूर्त हैं हम और जितना कोई ज्यादा पढ़ा लिखा है उतना ही वह ज्यादा बड़ा धूर्त है. हर आदमी राम, कृष्ण, गुरु नानक, अंबेडकर में उलझा हुआ है ताकि इनके सब के वजूद को बचाया जा सके. यही चीज आज धर्म के नाम पर नफरत का कारण बन चुकी है और कुछ लोग उसका फायदा उठा रहे हैं जैसे धर्म के ठेकेदार, पूंजीवादी और नेता लोग. खुद के घर में आग लगी है लेकिन हम बाहर आग बुझाते फिर रहे हैं.

जब हम जिंदा लोगों के बारे में, जो हर वक्त हमारे साथ रहते हैं, कुछ नहीं जान सकते तो हमें यह कैसे पता चलेगा कि गुरु नानक, बुद्ध और राम कैसे आदमी थे? वो सब तो अब बस एक इतिहास हैं और यह इतिहास भी तो लिखने वाले ने अपने नजरिये से ही लिखा होगा. जैसे भगत सिंह हमारे लिए एक स्वतंत्रता सेनानी है पर अंग्रेजों के लिए तो वह एक मुजरिम है.

ठीक ऐसे ही एक महापुरुष एक खास समुदाय के लिए एक बहुत बड़ा मसीहा लेकिन यही महापुरुष दूसरों के लिए अछूत है. दूसरा समुदाय इस महापुरुष की फोटो भी घर में नहीं लगाता. कैसे विचित्र स्थिति है! मतलब यह सब कोई परम सत्य नहीं बल्कि ये सब समाज को बांटने का एक षड्यन्त्र है .

जैसे अंबेडकर जी दलितों के लिए एक मसीहा है लेकिन बाकी के लोग अंबेडकर जी को हाथ भी नहीं लगाते.

सवाल यह है कि अगर कोई महापुरुष अच्छा है तो यह सबके लिए अच्छा क्यों नहीं होता?

इस हिसाब से हम जितना जल्दी अतीत या इतिहास से आज़ाद हो जाएं, उतना जल्दी हम अंधेरे से बाहर आ पाएंगे. जो हो गया, वह न तो सच है और न ही झूठ. न उसको आप गलत या सही साबित कर सकते हैं. सच सिर्फ वह है जो आगे भविष्य में हो सकता है. सच्चाई यह है कि हम वर्तमान में कोई भी फैसला लेकर मन चाहा भविष्य पैदा कर सकते हैं.

जीवन में कुछ सत्य या असत्य नहीं. बस मायने यह रखता है कि आप इस क्षण जीवन को कैसे महसूस कर रहे हो? क्या आपका जीवन से सीधा संपर्क है? क्या बीच में आपने बिचौलिए तो नहीं डाल रखे? जितने भी महापुरुष हैं, गुरु हैं और फ़क़ीर हैं ये सब बिचौलिए हैं क्योंकि ये आपके और जीवन के बीच में आ जाते हैं और एक रुकावट बन जाते हैं.

फिर हमारा जीवन से संपर्क टूट जाता है, फिर हम धारणाएं बना लेते हैं और कुछ विश्वास पाल लेते हैं. अब मेरे पिता जी मेरे लिए एक विश्वास नहीं, वह मेरे लिए एक रियलिटी है क्योंकि उनको मैंने देखा है, महसूस किया है. वह मेरे लिए एक सच, झूठ या विश्वास नहीं.

लेकिन अंबेडकर, नानक और राम मेरे लिए मात्र एक विश्वास हैं. ये एक रियलिटी नहीं. ये सब एक विश्वास हैं, मात्र एक कल्पना हैं क्योंकि इनको मैंने कभी देखा या महसूस नहीं किया. आप सच को कभी नहीं जान सकते, सच को सिर्फ जिया जा सकता है. ओशो कहते है कि जीवन को समझना नहीं, जीना है. समझ तो अपने आप आ जाएगी.

मेरे पिता जी के साथ मैंने सच को जिया है. मात्र कहीं से सुनकर मैंने अपने पिता की तस्वीर अपने मन में नहीं बनाई. सच कभी मिट्टी की तरह पकड़ में नहीं आएगा क्योंकि वह लगातार रुपांतरण में है. भला जो चीज हर वक्त बदल रही है उसको हम कैसे पकड़ सकते हैं?

और ज्यों ही उस सच को आप किसी दूसरे को बताओगे, उसी वक्त यह झूठ हो जाएगा. इस लिहाज से सारा अतीत एक झूठ है. याद रहे, सच वह नहीं जो हो गया, सच वह है जो अभी हो सकता है और जो होगा वह सच सिर्फ आपका सच होगा. आपका अनुभूत सच आपके बेटे का या आपकी पत्नी का नहीं हो सकता. आपके सच को आप एक प्रसाद के रूप में किसी और को नहीं दे सकते. हां, आप

किसी को उसका सच पैदा करने में मदद जरूर कर सकते हैं. सच एक निहायत ही निजी अनुभव है.

सच एक उगते हुए सूरज की तरह है. ज्यों ही आप इसे पकड़ने की कोशिश करोगे यह आगे सरक चुका होगा. अगर यह बात सच है तो फिर किसी गुरु, फ़क़ीर, ग्रंथ और संप्रदाय का कोई महत्व नहीं. यह जो गली गली में जागरण हो रहे हैं, कीर्तन हो रहे हैं, प्रवचन हो रहे हैं, यह जो तीरथ यात्राएं हो रही हैं ये सब ऐसे ही हैं जैसे हम पानी में मथनी डालकर मथे जा रहे हैं. यानि कि इसमें से कुछ नहीं निकलेगा.

हमारी हजारों सालों की बेवकूफी के बाद न तो आज तक कुछ हासिल हुआ और न ही आगे होगा. आप ही बताओ, हजारों सालों के बाद कौन सी एक चीज है जो सही हो रही है? अगर हम बड़ी ईमानदारी से यह सवाल करेंगे तो हमें सही जवाब स्वतः मिल जाएगा. लेकिन समस्या यह है कि एक सामान्य आदमी में इतनी हिम्मत ही नहीं कि वह इस तरह का सवाल उठा पाए.

परम्पराएं क्यों घातक होती हैं?

अब मान लो मैं शादीशुदा हूं, लेकिन अगर मैं ध्यान से देखूं तो मेरे दिल में कोई और बैठी है. कोई बचपन की, स्कूल, कॉलेज की महबूब. और अगर मेरे दिल में कोई और है तो जाहिर है मेरी पत्नी के दिल में भी कोई और बैठा हो सकता है.

लेकिन हम पति-पत्नी एक दूसरे को दिखाते ऐसे हैं जैसे हम बस एक दूसरे के लिए बने हैं. यानि कि सारी उम्र हमारे दिल में कोई और होता है लेकिन हम जीते किसी और के साथ रहते हैं और उस 'और' की जगह कोई दूसरा कभी नहीं ले सकता.

हम बस एक दूसरे को जिंदगी भर दिखावा करते रहते हैं. एक झूठ की जिंदगी जीते रहते हैं और असली सच्चाई यही है. जो हमारे गुरु, फ़क़ीर या ग्रंथ ने कहा

वह हमारी सच्चाई नहीं है. हमारी सच्चाई यह है कि हमारे दिल में कोई और है लेकिन शादी किसी और से हो गयी.

यानि कि मुझे एक ऐसे आदमी से प्यार करना है जिसका चुनाव कोई और करेगा. जीवन में इस समस्या को सुलझाना नितांत जरूरी है. अब बताओ, समस्या तो कोई और है लेकिन व्यस्त हैं हम कीर्तनों, भजनों और जागरणों में. हमारी सारी समस्याएं वर्तमान की हैं लेकिन हमें ये दिखती ही नहीं. वास्तव में हम कीर्तनों और भजनों में लीन होकर वर्तमान की वास्तविकता को अनदेखा करते रहते हैं.

लेकिन याद रखो, वर्तमान को सुलझाए बिना जीवन में कोई ख़ुशी नहीं आने वाली. जब मैंने देखा कि मेरे दिल में कोई और है तो मैंने सोचा कि मेरी पत्नी के दिल में भी कोई और हो सकता है क्योंकि वह भी तो मेरी तरह एक इंसान है. और अगर उसके दिल में कोई और है और उसको मजबूरन जीना मेरे साथ पड़ रहा है तो इससे बड़ी बेइंसाफी और क्या हो सकती है?

मैंने सोचा कि वह कौन हो सकता है जो मेरी पत्नी के दिल में है? जब मैंने ढूंढना शुरू किया तो मुझे वह मिल ही गया और मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा. आज मेरी पत्नी चाहे उससे शादी भी कर ले, मुझे कोई ऐतराज नहीं.

मुझे लगा कि जब यह अपने मां-बाप के घर थी तो एक ऐसी कैद में थी जहां यह अपनी इच्छा कभी जाहिर नहीं कर सकी होगी. लेकिन कम से कम मैं तो इसकी यह इच्छा पूरी कर सकता हूं. देखिए, इस तरह से सोचना ही वर्तमान में जीना कहलाता है. ऐसे सोचने से ही जीवन में क्रांति घटित हो सकती है.

यानि कि मैं इस तरह से सोचकर वर्तमान से मुखातिब हो रहा हूं. अगर हर आदमी वर्तमान से मुखातिब हो जाये और वह करे जो करना बनता है तो समाज में एक बहुत बड़ी क्रांति आ जाएगी. फिर अस्पताल, थाने, कोर्ट की जरूरत नहीं रहेगी. दिक्कत यह है कि आदमी एक नकली सी जिंदगी जी रहा है. जो भी हम पत्नी के

साथ कर रहे हैं, वह अतीत है. हम अतीत को निभा रहे हैं. मेरे उसके साथ सारे समीकरण अतीत की सोच से संचालित हो रहे हैं.

लेकिन जिंदगी सिर्फ बदलेगी इस तरह के फ़ैसलों से, जैसा मैंने लिया. ऐसे ही सीख होती है. हम किसी महापुरुष या गुरु से कभी कुछ नहीं सीख सकते. सीख पैदा होती है जब हम लकीर से हटकर सोचते हैं. और यह भी सच है कि नई शुरुवात के बिना सीख संभव नहीं और नई शुरुवात अतीत में नहीं हो सकती. वह सिर्फ वर्तमान में संभव है.

हमें एक पैर वर्तमान में रखना है और दूसरा उठाकर आगे यानि भविष्य में रखना है. अगले पैर का पिछले पैर से सिर्फ तब तक रिश्ता जब तक वह धरती से उठ नहीं जाता. जब पिछला पैर उठ गया तो वह अतीत नहीं रहता फिर वह वर्तमान बन जाता है. हम अतीत में क्या रहे इससे कोई मतलब नहीं. अब एक नई शुरुवात होने जा रही है, इसी वक्त.

कभी देख लेना, कोई एक पागल सा आदमी अगर एक औरत को छेड़ दे तो उसका पति उस पागल को पीट रहा होता है. लेकिन वह औरत बार बार उस पागल को छुड़वा रही होती है. कहेगी, “ना मारो, रहने दो, यह तो पागल है, जाने दो इसे.” पता है, वह आदमी पागल नहीं होता. वह वास्तव में उस औरत का कोई पुराना आशिक होता है जो प्यार के सिरे न चढ़ने से पागल हो जाता है.

लेकिन आज वह दर दर भटक रहा है. लोग उसे पागल समझते हैं लेकिन उसके दर्द को सिर्फ वह औरत या प्रेमिका ही समझ सकती है. इसलिए तो बार बार वह उस पागल को बचाती है. उसके पति को जरा सी भी भनक नहीं पड़ती कि आखिर उसकी पत्नी उस पागल को क्यों बचा रही है? उस औरत ने भी न जाने किन कारणों से उससे शादी नहीं की लेकिन अंदर ही अंदर आज भी उसको उतना ही प्यार करती है.

उसका अपने पति के साथ रहना महज एक औपचारिकता है, एक सामाजिकता है, एक **रूल** है. दिल तो उसका आज भी उस पागल के लिए धड़कता है. काश वह दिन दोबारा वापिस आ जाए, काश समय का पहिया वापिस घूम जाए. काश वह उसको गले लगा सके और जी भरकर रोए.

कितना मुश्किल है एक एक पल पति के साथ जीना. पत्नी को नहीं चाहिये ये महल, ये गाड़ियां. ये शानो-शौकत किस काम के जब वह साथ नहीं जिसे मन चाहता है? वह भी आज पागल हो गया है और गली गली ठोकरें खाता फिर रहा है. काश तब समय को संभाला होता लेकिन आज वह औरत किसी और की कैद में है.

अब कुछ नहीं हो सकता. अब एक ताला सा लग चुका है जहां आगे कोई नई संभावना नहीं, क्योंकि अब बस एक निभाना है. जीवन एक बोझ है. वह पागल दुनिया की किसी भी शक्ति से टकरा सकता है लेकिन उस औरत को वापिस पाने हेतु समाज की सामाजिकता से नहीं लड़ सकता.

परम्पराएं सिर्फ इसलिए घातक हैं क्योंकि इनके चलते जीवन में सभी संभावनाएं खत्म हो जाती हैं. फिर न चाहते हुए भी हमें बस एक मरी हुई लकीर को सारी उम्र पीटना है. फिर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह लकीर एक सांप है या रस्सी. अगर एक बार गले पड़ा ढोल ही सारी उम्र बजाना पड़ गया तो फिर जीवन कहां है?

यह तो नरक के समान है. जीवन तो तब है जब हर क्षण हमारे पास एक पसंद हो. क्या आपने कभी महसूस किया है कि जितने भी लड़के लड़कियां आपस में प्यार करते हैं आगे चलकर उनमें से दो प्रतिशत की भी आपस में शादी नहीं हो पाती. इसका मुख्य कारण यह है कि यह प्यार करने का उनका फैसला खुद का था. उन्होंने एक दूसरे को जान लिया, पहचान लिया इसलिए अब शादी के लिए कुछ बचा ही नहीं. इसलिए वो शादी कहीं और करते हैं.

यानि कि फल हमेशा तब गिरता है जब वह पक जाता है. कच्चा फल कभी नहीं गिरेगा. कच्चा फल इसलिए नहीं गिरता क्योंकि उसमें अभी कोई संभावना नहीं पनपी. वह अभी और पौधों को जन्म भी नहीं दे सकता और उसमें अभी पूरे पोषक तत्व भी नहीं आये.

लेकिन पकने के बाद वह स्वतः गिर जाता है. पति-पत्नी कभी पकते नहीं. हां, एक दूसरे से थक ज़रूर जाते हैं. तो फिर पति-पत्नी एक दूसरे से दूर क्यों नहीं गिरते? क्योंकि मान्यताएं, परंपराएं, **रूल** उनको आपस में बांधे रखते हैं. आखिर जाएं तो जाएं कहां ? भागने का कोई रास्ता ही नहीं बचा. चारों तरफ परम्पराओं का जाल बिछा हुआ है. भागने की कहीं कोई संभावना ही नहीं बची.

कहने का मतलब है जिस चीज को हमने खुद चुना है, जो हमारी मर्ज़ी से हुआ है, सिर्फ उसको हम दिलों-जान से जीते हैं. वहां हम औपचारिकता नहीं करते; और जब हम किसी चीज को दिल से जीते हैं, खुद फैसले लेते हैं, सफल और असफल होते हैं तो जीने से हमेशा जीवन के समीकरण बदलेंगे. हमेशा वास्तविकता बदलेगी और हमारी चाहतें और तमन्नायें भी बदलेंगी.

एक लड़का लड़की प्यार करते हैं लेकिन शादी नहीं करते. क्योंकि उन्होंने प्यार को जी लिया. अब जिस चीज को ये दो प्रेमी शादी न करके ठुकरा देते हैं और यह सिद्ध कर देते हैं कि यह रिश्ता चलने वाला नहीं, उसी तरह के रिश्ते को एक पारंपरिक शादी वाला जोड़ा सारी उम्र ढोता रहता है.

किसी ने सही ही कहा है कि लोग अनजान रिश्तों में बंधन ढूंढते है और बंधे रिश्तों में आजादी. पति-पत्नी सारी उम्र क्यों एक दूसरे को झेलते रहते हैं? ताकि शांति भंग न हो. ब्रोनि वेयर कहते है, “अपनी भावनाओं का गला घोंट दिया ताकि शांति बनी रहे और जीवन भर एक गलत रिश्ते को ढोते रहे.”

ऐसे ही किसी ने कहा है कि अगर मोहब्बत स्थायी हो तो बहुत दुखदायी, यह बदलती रहे तो जिंदगी गुलजार रहती है. याद रहे, मोहब्बत कई जिस्मों से होकर गुजरने से मिलती है.

लेकिन वह पागल हमेशा उस औरत को प्यार करता रहेगा क्योंकि उसको अपने प्यार को जीने का मौका ही नहीं मिला. वह बार बार जाने अनजाने में उस औरत से टकरा जाता है और उसके पति को उस पागल को बार बार पीटना पड़ता है.

दुनिया को कभी इन दोनों के दर्द का पता नहीं चलेगा. देखिये, समाज को हमारे दर्द से कोई लेना देना नहीं. समाज बस परंपराओं का पालन चाहता है. हमारी खुशी से समाज को कोई मतलब नहीं. परंपरा का मतलब है जो एक बार हो गया, उसी का बार बार होना.

किसी ने एक बार रोजा क्या रखा, आज हर आदमी वही किये जा रहा है. किसी ने एक बार बुर्क़ा पहन लिया तो बस वही एक परंपरा बन गयी. किसी ने लंबे बाल रख लिए, बस वही परंपरा बन गयी. फिर लोग परंपरा को निभाने लगते हैं. लेकिन जीवन निभाना नहीं होता. जीवन फूल की तरह खिलना है.

कोई कारण नहीं, बस खिलना है. जीवन एक उत्सव है, एक उमंग है. लेकिन यहां तो सब निभा रहे हैं. कोई अपने गुरु की बात को निभा रहा है तो कोई अपने देवता को खुश कर रहा है.

ऐसे ही, एक पत्नी सारी जिंदगी अपने पति को खुश रखने में लगी रहती है. और एक पति सारी उम्र अपनी पत्नी को खुश करने में लगा रहता है लेकिन कोई खुश नहीं हो पाता. जहां निभाना है, वहां जीवन नहीं हो सकता, प्यार तो बहुत दूर की बात है.

हम आज भी लंबे लंबे बाल रखे जा रहे हैं, बुर्क़ा डाले जा रहे हैं! इससे क्या हो रहा है? हम शायद अतीत से इंटरेक्शन/तालमेल करना चाह रहे हैं लेकिन अतीत

से कभी इंटरेक्शन/तालमेल नहीं होता. इंटरेक्शन सिर्फ वर्तमान से होता है. जैसे हम एक बच्चे को मुस्कुराहट दें, वह तुरंत वापिस हमें मुस्कुराहट देगा. अब आप नानक देव जी की फोटो को मुस्कुराहट देकर देखो, वह कभी नहीं मुस्करायेगी.

अतीत से अब कोई लेनदेन नहीं हो सकता क्योंकि वह मर चुका है.

इसीलिए अगर हम बुर्का पहने जा रहे हैं तो बस हजारों सालों से पहने जा रहे हैं. यह कभी छूटेगा नहीं क्योंकि यह फल की तरह गिरता नहीं. गिरता क्यों नहीं? क्योंकि यह पकता नहीं. पकता क्यों नहीं? क्योंकि इसमें कोई इंटरेक्शन/तालमेल नहीं. इंटरेक्शन क्यों नहीं? क्योंकि यह महज एक परंपरा है. क्योंकि यह कोई वास्तविकता नहीं है.

याद रहे, जीवन एक बार मिलता है, बार बार नहीं. आज तक कोई साबित नहीं कर पाया कि जीवन बार बार मिलेगा. इसलिए इसका सही तरीके से जीने में इस्तेमाल करें. आजादी महसूस करने की कोशिश करें. खुलकर जिएं और दूसरों को भी जीने दें, आज़ाद विचारों के साथ.

हमारे जीवन में कोई नई सवेर क्यों नहीं हुई?

एक बार एक धोबी अपने गधे पर सारे कपड़े लाद कर रात को जा रहा था तो अचानक उसका गधा एक गड्ढे में गिर गया. धोबी ने गधे को निकालने की काफी कोशिश की लेकिन वह उसे नहीं निकाल पाया. धोबी ने सोचा, "गधा तो वैसे भी बूढ़ा ही है और यह निकलेगा भी नहीं, चलो इसको गड्ढे में ही दबा देते हैं." इसलिए धोबी ने फावड़े से मिट्टी गड्ढे में गधे के उपर फेंकनी शुरू कर दी.

अब ज्यों ही धोबी उस पर मिट्टी फेंकता, गधा अपने कंधो को झटका देकर मिट्टी को नीचे गिरा देता और फिर उसी मिट्टी के उपर चढ़ जाता और इस प्रकार थोड़ा उपर आ जाता. रात भर इसी तरह चलता रहा. धोबी फावड़े से मिट्टी गधे के उपर फेंकता रहा और हर बार गधा अपने शरीर को झटका दे कर मिट्टी नीचे फेंक देता और खुद मिट्टी के उपर चढ़ जाता, और इस प्रकार थोड़ा उपर आ जाता.

यह कंधों को झकझोरने का गधे का लंबा अनुभव तो था ही. खैर, सुबह होते ही गधा गड्ढे से बाहर आ गया.

शुरू में जब इंसान जंगलों में रहता था तो बहुत उद्दंड रहा होगा. उसमें कोई अनुशासन नहीं था और उसको काबू करने का कोई तरीका भी नहीं था. कोई काम भी नहीं था जिसमें वह व्यस्त रह सके. शायद इस तरह के मानव को काबू में रखने के लिए ही धर्म और भगवान जैसे विचार पैदा किये गए थे. ये लक्ष्य उस समय बहुत फिट बैठते थे क्योंकि ये प्राप्त नहीं किये जा सकते थे. क्यों? क्योंकि ये काल्पनिक लक्ष्य थे.

अब मान लो, अगर उस आदिमानव को कोई यथार्थ के लक्ष्य दिए जाते तो उसके पास इतनी ऊर्जा थी कि वह झट से उन्हें पूरा कर देता और कहता हुक्म मेरे आका. यानि कि वह फिर और काम मांगता और उसको और कितना काम देते क्योंकि उन दिनों कोई काम था ही नहीं. इसलिए उसको यह परमात्मा वाले काम

पर लगा दिया ताकि यह न तो कभी पूरा हो और न कोई आदमी दोबारा आ कर और काम मांगे.

अब ज्यों-ज्यों इंसान को समझ आई तो उसने इस लक्ष्य के विरुद्ध आवाज़ नहीं उठाई कि हमें कोई वास्तविक गोल दो जिन्हे हासिल भी किया जा सके. अब जो लोग शातिर थे और भीड़ को काबू में रखना चाहते थे उन्होंने तरह तरह के डर, भ्रम पैदा किये ताकि आम जनता को जरा सी भी समझ न आये कि यह आत्मा और परमात्मा का लक्ष्य फ़िजूल का लक्ष्य था. उन्होंने भोली जनता को कभी सांस ही नहीं लेने दिया ताकि वह कुछ सोच पाती.

वो गधे की तरह रीती-रिवाज़ों, रुढ़िओं, अंधविश्वासों, वहमों रूपी मिट्टी जन मानस के ऊपर फेंकते रहे. अब अगर उस वक्त के इंसान में इतनी अक्ल होती तो वह इस मिट्टी को कंधों को झटका देकर नीचे फेंक देता और स्वयं इसके उपर चढ़ जाता और थोड़ा उसकी चेतना उपर उठ जाती. यानि कि वह 'ब्रेक द रुल' करता और उसका विकास होता. यानि कि आदमी को आगे की तरफ देखना था. जीवन बहुत छोटा था इसलिए आदमी को जल्दी **रूल** तोड़ने थे.

अब गधे की तरह जब हमारे ऊपर कचरा फेंका जाने लगा तो हमें उस वक्त उल्टा मजा आता था और हमें आराम महसूस होता था; और परिणाम यह हुआ कि हम इन धारणाओं, परिपाटियों, कर्म-कांडो में दब गए हैं और अब हमारी मौत हो चुकी है.

अब सदियों से मानव के ऊपर कचरा फेंका जा रहा है कि कहीं इसको किसी तरह की समझ न आ जाये. अब कोई चारा भी नहीं क्योंकि यह 'ब्रेक द रुल' तब करना था जब हमारे ऊपर पहली बार मिट्टी फेंकी गयी थी. तभी मौका था विद्रोह करने का. उसके बाद तो यह सहन करने की एक आदत सी बन जाती है.

पहली बार जब हम झूठ बोलते हैं तो बुरा सा लगता है लेकिन धीरे धीरे यही झूठ स्वाभाविक लगने लगता है और फिर झूठ हमारी जिंदगी का एक अभिन्न अंग बन

जाता है. इसी तरह से हमें आज बोझ में जिंदगी जीना काफी स्वाभाविक लगता है. हमारी जिंदगी कर्मकांडो, धारणाओं, विश्वासों ने बहुत जटिल कर दी है लेकिन हमें इससे कोई परेशानी भी नहीं क्योंकि कोई और विकल्प भी नज़र नहीं आता. अब तो हम इसके आदी भी हो गए हैं.

और एक और बड़ी दिक्कत यह है कि यह झूठ हिन्दू, सिख, मुस्लिम, दलित में बराबर पसरा हुआ है. और यह झूठ सच ही लगने लगा है क्योंकी सब इसके बराबर शिकार हैं.

हमने तब यह सब नहीं किया, यानि कि जो गलत था उसको जिंदगी से गिराया नहीं. अब तो गंदगी की हमारे कंधों पर हजारों परतें जम चुकी हैं. अब तो एक के ऊपर एक परत जम चुकी है और धर्म के ठेकेदार यह बिल्कुल नहीं चाहते कि हम कुएं से बाहर आएं.

आज हमारे देश में हालात बहुत गंभीर है. प्रवचन देने वाले साधु-संत पहले से भी हज़ारों गुना बढ़ चुके हैं, तीर्थ स्थल भी पहले से हज़ारों गुना ज्यादा हैं और सभी लोग किसी न किसी साधु से दान-दीक्षा भी लिए हुए हैं. लेकिन फिर भी चारों और लूट-मार मची है, बलात्कार हो रहे हैं, शोषण हो रहा है.

बलात्कार पर बलात्कार होते जा रहे हैं. तीन तीन साल की बच्चियों के साथ बलात्कार हो रहे हैं फिर भी हमारा देश एक सांस्कृतिक देश है! यह **रूल** टूटता क्यों नहीं? भ्रष्टाचार और बेईमानी में हम भारतीय दुनिया में नंबर एक पर हैं लेकिन फिर भी हम आदर्शवादी कहलाते हैं! हमारी किसी पुरानी चीज को **ब्रेक** नहीं लग रही इसलिए कोई नई शुरुवात भी नहीं.

आज कोई भी यह प्रश्न नहीं पूछता कि जब हम सब ठीक कर रहे हैं तो हमारे साथ चारों और बुरा क्यों हो रहा है? कैसे पूछे कोई? पूछने वाली बुद्धि तो सैंकड़ों फुट नीचे गधे के पैरों तले दबी पड़ी है.

अब कोई भी गड़े मुर्दे नहीं खोदना चाहता. सब वैसे ही जिए जा रहे हैं जैसे दूसरे. हर आदमी यही सोचता है कि शायद एक दिन सब ठीक हो जायेगा. लेकिन वह दिन हज़ारों साल बाद आज तक न आया और आएगा भी नहीं. आज भी एक ही समाधान है कि यह जो कचरा हमारे कंधो पर लदा है इसको गिराओ. तभी हमारी बुद्धि का विकास होगा.

आज भी हम 'ब्रेक द रुल' करके इस बोझ से आज़ाद हो सकते हैं. लेकिन एक ही शर्त है कि हम पीछे के बजाय आगे की तरफ देखें. हमें जल्दी जल्दी **रूल** तोड़ने होंगे. जब गधा इतना बुद्धिमान हो सकता है कि वह 'ब्रेक द रुल' करके नरक से बाहर आ सकता है तो हम क्यों नहीं?

जो भी आदर्श, गुरु, फ़क़ीर, देवता, ग्रंथ, परम्पराएं हमारी जिंदगी में दाखिल हुए थे उनको उसी वक्त, सोच समझकर रौंदते हुए आगे निकल जाना था. हम आगे निकल जाते तो फिर एक नई सवेर के दर्शन होने थे. चाहे फिर कोई कितना बड़ा महापुरुष हो उसको मिट्टी में मिल जाना था. आज वो सब हमारे लिए बस एक मुट्ठी की राख होते.

क्योंकि ये गुरु, ये देवता और ये पैगंबर हमारे जीवन में रुक गए इसलिए एक नई सुबह ने हमारे जीवन में दस्तक नहीं दी. ऐसे जैसे हमारे जीवन को कोई कोढ़ लग गया है.

जैसे हमारे दादा, परदादा खाते, पीते, पहनते थे वैसे ही हम करते हैं. वैसे ही हम कपड़े पहनते हैं, वैसे ही बाल रखते हैं, वैसे ही पूजा करते हैं, वैसे ही शादी करते हैं, वैसे ही पढ़ते लिखते हैं, वैसा ही रूबरू सोचते हैं. कहीं कोई फर्क नहीं. कोई नयापन नहीं, कोई बदलाव नहीं.

इसका मतलब जीवन में कोई नई सवेर नहीं हुई. जीवन की सवेर उस वक्त होगी जब हम गुरुओं, फकीरों, ग्रंथों, मर्यादाओं को गंगा में बहा देंगे. जब हम आगे

निकल जायेंगे और अतीत वहीं पीछे रह जाएगा जहां उसे रहना चाहिए, जहां तक वह संबंध रखता था.

हमारा संबंध आज से है, अभी से है. हमारी जरूरत क्या है? हमें अच्छा क्या लगता है? महत्व हमारा होना चाहिए न कि अतीत के महापुरुषों का. जीवन बहुत छोटा है, हमें पुराने **रूल** तोड़ने होंगे.

हम दुनिया में सबसे ज्यादा नाखुश इंसान क्यों हैं?

मैं जब यूनिवर्सिटी में पढ़ता था तो मेरे दोस्तों का जीवन के प्रति लाजवाब ज़ज्बा देखने को मिलता था. लगभग सभी दोस्त एक बात पर तो सहमत थे कि एक-ना-एक दिन प्रोफेसर बनना है और शादी किसी बहुत सुंदर लड़की से करनी है और फिर रोज पत्नी के साथ यूनिवर्सिटी के गेट पर आकर एक एक कप चाय का पिया करेंगे.

आज वो सभी साथी अच्छी नौकरियों पर हैं पर सभी की पत्नियां बिल्कुल भी सुंदर नहीं हैं. कइयों की पत्नियां तो बड़ी बदसूरत सी हैं. और सच पूछो तो उनमें अब सुंदर लड़की की चाह रही भी नहीं. देखो, सारी दुनिया में अनगिनत सुंदर लड़कियां होंगी. अब देखो, वह लड़की सारी दुनिया में से भी चुन सकते थे लेकिन उन्होंने अब यह फैसला किया कि सारी दुनिया को छोड़कर लड़की सिर्फ भारत से ही चुननी है.

कोई भी आदमी किसी दूसरे देश से लड़की क्यों चुनेगा? बहुत सारी समस्याएं खड़ी हो जाती हैं. उसकी भाषा हमारी भाषा से मेल नहीं खायेगी, और भी बहुत सी समस्याएं हो सकती हैं. इसका मतलब उन्होंने शुरू में ही अपने आपको बहुत सीमित कर लिया. वो सुंदर लड़की तो चाहते थे पर वो चुनौतियों से डर गए. चुनौतियों का सामना करने के बजाय उन्होंने अपने सपनों से समझौता करना ही उचित समझा.

पूरी दुनिया की बहुत सी सुंदर लड़कियां उन्होंने पहले ही झटके में ठुकरा दी. फिर अपने देश में भी उन्होंने सारे धर्म ठुकरा दिए और यह तय किया कि शादी सिर्फ अपने धर्म में करेंगे. यानि कि फिर बहुत सी सुंदर लड़कियां उनकी पहुंच से दूर हो गयी. यानि कि फिर उन्होंने अपने सपनों को और सीमित कर दिया. वो सब सुंदर लड़की तो चाहते थे, पर ऐसी सुंदर लड़की भी नहीं चाहिए थी जिसकी वजह से जीवन में जोख़िम पैदा हो.

और थोड़ा आगे चलकर फिर उन्होंने एक और फैसला किया कि लड़की किसी खास जाति की ही होनी चाहिए.

फिर बहुत सी लड़कियां उनकी पहुंच से बाहर हो गयी. वास्तव में वो सब ऐसी लड़की ढूंढ रहे थे जो उनके **रूल** में या व्यवस्था में फिट हो जाये ताकि दिक्कत कम से कम हो. लेकिन यह व्यवस्था दूर की थी. यह उनकी खुद की नहीं बल्कि समाज की थी. आपने देखा, धीरे धीरे कैसे मेरे दोस्तों की प्राथमिकताएं बदल रही थी. कैसे वो अपने सपनों पर लगातार समझौता कर रहे थे? कभी उनका सपना सिर्फ एक सुंदर सी लड़की थी, पर धीरे धीरे कई नए सवाल सामने आ गए और वो लोग मूल मुद्दे से भटकते गए.

अब सुंदरता प्राथमिकता नहीं रही. अब और बहुत सी चीजें बीच में आ गयी; और आखिर में उन्होंने फिर एक और बड़ा वार किया कि लड़की नौकरी लगी होनी चाहिए और अच्छे खानदान से भी होनी चाहिए. और इसके बाद तो दहेज का विचार भी आ गया. यानि कि उनके पास कभी जो पूरी दुनिया का विकल्प उपलब्ध था वह अब सिकुड़ कर एक छोटे से बिंदु पर आ कर टिक गया. उनके मन में पहले दहेज जैसी कभी कोई चीज नहीं थी, पहले तो सिर्फ बस एक सुंदर लड़की चाहिए थी.

लेकिन ज्यों-ज्यों उनकी शादी का निर्णय करीब आता गया, कई सवाल उठ खड़े हुए. समाज की एक ऐसी क्रूर व्यवस्था सामने उभर कर आयी जिसने उनके लिए

सुंदर लड़की की अहमियत ही खत्म कर दी. मेरे दोस्तों ने सुंदर लड़की के विषय पर अब समझौता कर लिया. लड़की अब ठीक-ठाक भी चल जाएगी पर वह नौकरी पर होनी चाहिए और अच्छे खानदान से होनी चाहिए.

अब वह लड़की चुनी जाएगी जो इन लड़कों की चाहत के अनुसार नहीं बल्कि परिवार और समाज के बंधे बंधाए मापदंडों में फिट हो सके.

यानि कि एक ऐसा विचार उत्पन्न हुआ जिसने कई तरह की दीवारें खड़ी कर दी. मेरे दोस्त अपने अंदर से ही बंट गए. उन्होंने अपने आप को संकुचित और सीमित कर दिया. यानि कि उनका हर कदम उनको सीमित करता जा रहा था और उनके विकल्प संकुचित होते जा रहे थे. हर कदम पर जीवन का दम घुटता जा रहा था. औरत से जिस उद्देश्य के लिए शादी करनी थी वह उद्देश्य ही ख़त्म हो गया.

उनको फैलना था लेकिन वो सीमित होते चले गए. उनको पूरी दुनिया छान मारनी थी ताकि एक सुंदर सी बहु मिल सकती लेकिन वो तो पहले ही एक छोटे से बिंदु पर केंद्रित हो गए थे. जीवन का इतना महत्वपूर्ण फैसला लेकिन जाति, धर्म और देश ने बहुत सी रुकावटें उत्पन्न कर दी.

जिस सुंदर सी औरत ने हमारे जीवन में रंग भरने थे, जिसके साथ हमने यूनिवर्सिटी के गेट पर चाय की चुसकियों का स्वाद लेना था हमने उसी पर समझौता कर लिया. यानि कि जो सबसे महत्वपूर्ण था, जिसने हमारे जीवन में उल्लास भरना था उसको हमने धर्म, जाति और देश पर कुर्बान कर दिया.

मुझे लगता है, हमारी सारी मान्यताएं, धारणाएं, विश्वास कदम कदम पर हमारी खुशियों का गला दबाते हैं और इसका जीता जागता उदाहरण यह है कि हम दुनिया में सबसे ज्यादा ना-खुश देशों में से एक हैं. सारा जीवन इस बात में निहित है कि हम सीमाओं के कितना पार जाते हैं? जीवन इतना छोटा है कि हमें हर कदम पर सीमाओं को तोड़ना है. तभी तो जीवन का एक सुंदर सा फूल खिलेगा.

मान लो, एक चिड़िया का बच्चा जवान हो गया लेकिन वह घोंसले से बाहर छलांग मारने के बजाय अगर यह फैसला कर ले कि बाहर क्या जाना, घोंसले के अंदर रहना ही बेहतर है तो हम सोच सकते हैं कि उसका जीवन कैसा होगा? एक बीज हवा के वेग के साथ बिखर कर अनंत जंगलों को जन्म देता है, उसका अनंत विस्तार हो जाता है. वह इतना विस्तृत होता चला जाता है कि उसकी कोई पहचान ही नहीं बचती.

लेकिन हम वास्तविकता का उल्टा करते हैं. हम हर कदम पर संकुचित होते चले जाते हैं. और मैं आपको बार बार कहता हूं कि जैसे शादी के बारे में हमारी विचारधारा गलत है ऐसे ही हम सेक्स, प्यार और धर्म के विषय में भी उलट कर रहे हैं. धर्म में, सेक्स में और प्यार में भी हमने इतनी लकीरें खींच रखी हैं कि हम जीवन के मूल मुद्दों से बिल्कुल भटक गए हैं.

पत्नी के मामले में हम चलो कुछ तो चुनाव करते हैं, चाहे बहुत संकीर्ण ही सही. पर धर्म तो हम पर पूरी तरह से थोपा जाता है. सारे संस्कार, सिद्धांत और आदर्श हम पर थोपे जाते हैं. हम सारी उम्र इनको ढोकर चले जाते हैं. धर्म कभी हमारा अपना फैसला नहीं होता तो फिर हमें कैसे पता चले कि यह ठीक है या गलत?

हम कैसे कह सकते हैं कि जिस धर्म को हमने अपनाया है वह ठीक है, क्योंकि हमने तो उसे चुना ही नहीं? कभी हमें ख्याल नहीं आया कि यह धर्म दूसरों के अनुभवों का एक संग्रह मात्र है और यह गलत भी हो सकता है. हम अपनी इतनी कीमती जिंदगी को दांव पर लगा देते हैं. जब यह कहा जाता है कि हीरे जैसा जन्म कौड़ी बदले जाये, तो उसका यही मतलब होता है कि हम अपना हीरे जैसा जीवन तो जीते ही नहीं. हम तो सारी उम्र दूसरों के अनुभवों को दोहराने में लगे रहते हैं.

अब करना क्या है? आज से हर चीज को 'ना' कहना शुरू कर दो और देखना हमारी एक नयी पहचान बननी शुरू हो जाएगी. हम बहुत हल्का महसूस करेंगे. जो भी चीज परंपरागत है उसको ठुकरा दो. इन सब कर्मकांडों, गुरुओं, फकीरों,

देवताओं, धारणाओं को दो साल के लिए **ब्रेक** लगा कर देखो. हमारे व्यक्तित्व में बहुत सकारात्मक बदलाव आएंगे.

जब आज तक यह सब करके कोई अच्छे परिणाम नहीं आए तो इन सबको **ब्रेक** देने से कौन सा बड़ा अनर्थ हो जाएगा? जितना बुरा अब हमारे साथ हो रहा है इससे और ज्यादा बुरा तो होने से रहा. एक मौका लेने में क्या बिगड़ता है? देखिए, जब तक हम विकल्पों पर काम नहीं करते, तब तक हम अच्छे नतीजों की उम्मीद कैसे कर सकते हैं?

अगर हम वही करते चले जाते हैं जो हम हजार साल से करते आए हैं तो परिणाम भी वही आएंगे जो हजार साल से आते रहे हैं. अगर हमने थोड़ा अलग तरह के परिणाम लेने हैं तो जो हम करते आए हैं उसमें तोड़-फोड़ तो करनी पड़ेगी.

हमारा जीवन इतना लंबा नहीं है कि हम हजारों साल पुरानी मान्यताओं को ढोते रहें? नहीं.... हमें छोटी अवधि के लक्ष्य रखने होंगे और अगर परिणाम सही नहीं आते तो तुरंत योजना को बदलो. अगर परिणाम सही नहीं रहे तो अपने विश्वासों पर शक करना होगा.

इसलिए हमें बचपन में जो भी सिखाया जाता है वह धर्म के नाम पर हो या और कुछ, उसमें गलतियां ढूंढना जरूरी है. नहीं तो हम मानसिक गुलाम बनकर रह जाते हैं और इस छोटी सी जिंदगी को खुशी से भी नहीं जी पाएंगे, तो अच्छे फैसले लेना ही ठीक होगा.

धार्मिक लोग अवसाद का शिकार क्यों होते हैं?

एक आदमी ने बहुत तपस्या की और एक जिन्न प्रकट हो गया और जिन्न ने उस आदमी की इच्छा पूछी ताकि वह पूरी कर सके. उस आदमी ने उससे कहा कि वह उसके लिए एक सुंदर घर बनाए तो जिन्न ने उसी वक्त उसके लिए एक सुंदर घर बना दिया. तब उस आदमी ने कहा कि मेरे खाते में दस करोड़ जमा कर दो तो जिन्न ने वह भी पल भर में कर दिया. ऐसे ही आदमी एक के बाद एक इच्छा करता गया और जिन्न पूरी करता गया.

एक वक्त ऐसा आया कि आदमी के पास मांगने के लिए कुछ बचा ही नहीं था और वह जिन्न से नजरें चुराने लगा. लेकिन जिन्न उससे काम मांगने लगा क्योंकि जिन्न काम के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता. लेकिन आदमी के पास तो कोई काम बचा नहीं था. लेकिन जिन्न को तो काम चाहिए था इसलिए जिन्न ने कहा कि काम दो नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूंगा.

आदमी बड़ा परेशान था कि किया जाए तो क्या किया जाए? इस जिन्न से कैसे पीछा छुड़ाया जाए? तभी उसको एक तरकीब सूझी. उसने धरती में एक लंबा बांस गाड़ दिया और बोला, “जिन्न भाई, आप लगातार इस बांस पर चढ़ते रहो और उतरते रहो, बस यही आपका काम है."

अब जिन्न उस काम में लग गया और दोबारा आकर कभी उस आदमी से काम नहीं मांगा.

जैसा कि मैंने आपको कई बार बताया कि जब सभ्यता नहीं विकसित हुई थी तो आदमी के पास कोई काम नहीं था लेकिन आदमी के पास बहुत ऊर्जा थी. और सबसे बड़ी चुनौती यह रही होगी कि उस आदिमानव को व्यस्त कैसे रखा जाये? शायद सेक्स को छोड़ कर आदमी के पास मनोरंजन का कोई साधन भी नहीं था.

जब आदमी के पास कोई काम ही नहीं था, और ऊर्जा अनंत थी, तो स्वाभाविक है आदमी सारा वक्त सेक्स में ही संलिप्त रहे.

एक जानवर जैसे आदमी को कैसे समझाया जाए कि हर वक्त सेक्स नहीं करना. बस इसका एक ही तरीका था कि सेक्स को पाप घोषित कर दो. ऐसे ही आदमी को ऐसे ऐसे सिद्धांत पकड़ाए गए जिससे आदमी उलझा रहे और जीवन को बिल्कुल समझ न पाए. बाद में इन सभी सिद्धांतों ने एक ढांचे का रूप ले लिया, एक **रूल** का रूप धारण कर लिया और इसको धर्म का नाम दिया गया.

अब उस वक्त जिन्न की तरह आदमी काम मांगता था, लेकिन चालाक लोगों ने उसको बांस पकड़ा दिया कि इस बांस पर चढ़ते-उतरते रहो. धर्म के सारे सिद्धांत इस बांस पर चढ़ने के बराबर हैं. सदियों से आदमी इन सिद्धांतों को दोहरा रहा है लेकिन उसके अंदर जरा सी भी समझ पैदा नहीं हो रही. समझ इसलिए नहीं पैदा हो रही क्योंकि बांस पर चढ़ना एक यांत्रिक प्रक्रिया है और यह विवेक को पैदा ही नहीं होने देता.

जिंदगी में विवेक तब पैदा होता है जब हमारी अपनी कोई इच्छा होती है या हमें कोई जरूरत महसूस होती है. फिर हम एक योजना बनाते हैं और कई तरह के फैसले लेते हैं. हमें ऐसे मुकामों में ज्यादातर असफलता ही मिलती है. लेकिन चाहे हम किसी मुकाम में कितनी बार असफल रहे हों, फिर भी यह असफलता हर बार हमें अपार ज्ञान देकर जाती है. जब जिंदगी में बहुत उतार-चढ़ाव आते हैं तो हमारा विवेक पनपने लगता है.

लेकिन सोचो, एक आदमी बांस पर चढ़ रहा है, उतर रहा है तो उसका क्या विवेक पनपेगा? उसने कोई फैसला तो लिया नहीं, कोई असफलता भी हाथ नहीं लगी तो जाहिर है जीवन के अंदर कोई नई जानकारी भी नहीं आई होगी.

बांस पर चढ़ना क्या है? बांस पर चढ़ना एक यांत्रिक प्रक्रिया है. ऐसे ही धर्म एक बांस पर चढ़ने जैसी यांत्रिक प्रक्रिया है. क्यों? क्योंकि हमने न तो अपना धर्म चुना,

न अपने गुरु चुने और न ही देवता चुने. बस ये सब हमें एक धरोहर के रूप में मिल गए.

अब आप ही बताओ, बिना चुनाव के हमें कैसे पता चला कि हमारा ही धर्म बढ़िया है या हमारे वाले फकीर और देवता ही सही हैं? अब क्योंकि धर्म एक यांत्रिक प्रक्रिया है इसलिए सभी धार्मिक लोग ज्यादातर कुंठित होते हैं, अवसाद का शिकार होते हैं.

यही कारण है कि किसी धार्मिक देश में कभी कोई खोज नहीं होती, किसी धार्मिक देश ने दुनिया को आज तक कोई सहूलियत की चीज नहीं दी. धार्मिक देशों में ज्यादातर अन्याय और शोषण मिलेगा. धार्मिक आदमी को यह भी आज तक समझ नहीं आया कि किसी ने उसको गलत काम पर लगा दिया यानि कि बांस पकड़ा दिया.

अब जिन्न एक यांत्रिक प्रक्रिया को दोहराते दोहराते थक जाएगा, टूट जायेगा और अंत में उसकी मौत हो जाएगी. लेकिन दिक्कत यहीं खत्म नहीं होती. अगर जिन्न मर भी जाता तो एक अध्याय खत्म हो जाता. लेकिन खेल यहीं खत्म नहीं होता. होता यह है कि मरने से पहले वह जिन्न इस बांस को अपने बच्चे को पकड़ा जाएगा.

अब बच्चे भी उस बांस पर यूं ही यांत्रिक तरीके से चढ़ते उतरते रहेंगे और उनको कभी पता नहीं चलेगा कि उनके पूर्वजों को किसी ने बड़ी चालाकी से गलत काम में लगा दिया था. इस तरह से एक **रूल** अंधविश्वास का रूप ले लेता है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है. लेकिन इस तरह की जिंदगी में जीवन नदारद रहता है. अपने बच्चों पर घिसे-पिटे धार्मिक अनुष्ठान थोपना ही सबसे बड़ा सामाजिक अपराध है.

अब धर्म अपने आप में कोई बहुत बुरी बात नहीं? इसमें बुराई यह है कि यह आदमी में विवेक पैदा नहीं होने देता और उसकी वजह से आदमी फिर सारे गलत

काम करता है. धीरे धीरे यही जीवन हमारी मान्यता बन जाता है, हमारी पहचान बन जाता है और जो कोई इस झूठी पहचान को बदलने की कोशिश करता है उसका वध कर दिया जाता है.

अब धर्म का मतलब इससे मत लेना कि सिर्फ वही आदमी, जो मंदिर जाता है या रोज़े रखता है, धार्मिक है. नहीं, वह हर आदमी धार्मिक है जो किसी एक नेता या एक महापुरुष, एक गुरु, एक ग्रंथ के गुणगान करने लगता है. मेरे हिसाब से उतना ही अंधविश्वासी शिव या भोले को मानने वाला है जितना कोई भीम राव अंबेडकर को मानने वाला है.

शायद आप कहोगे कि शिवजी तो काल्पनिक हैं जबकि अंबेडकर जी तो वास्तविक हैं और वह एक समाज सुधारक भी हैं. आप अपनी जगह सही हो लेकिन दलितों ने भी अंबेडकर जी को देखा और महसूस थोड़ा किया है? उन्होंने भी कहीं से सुन लिया, पढ़ लिया और उसको अपना लिया.

अतीत चाहे नकली हो या असली, हमेशा एक कल्पना रहेगा. फिर भी अगर एक से न जुड़ा जाए और इनको सिर्फ एक इतिहास के रूप में पढ़ा जाए तो कुछ फायदा हो सकता है.

यह अंधविश्वास इसलिए है क्योंकि भीम राव वालों को समाज में अब भीम के बजाय और कोई विकल्प नज़र ही नहीं आता. अब जिन्न की समस्या क्या है? जैसे आपको भीम राव अंबेडकर के बजाय और कोई महापुरुष नज़र नहीं आता, ऐसे ही जिन्न की जिंदगी में काम के बजाय और कोई विकल्प है नहीं. वह काम के बिना ज़िंदा ही नहीं रह सकता. आपको भी लगता है कि अंबेडकर जी के बिना आपका कोई वजूद ही नहीं.

अगर सारे दलित अंबेडकर साहिब को त्याग दे तो क्या होगा? सब आजाद हो जाएंगे क्योंकी अभी तक अंबेडकर जी ने इन सबको एक माला में पिरो कर रखा

था. अब अगर ये लोग अंबेडकर जी को छोड़ देंगे तो बिखर जाएंगे. यानि की आजाद हो जाएंगे पर आजाद रहना ही तो सबसे मुश्किल काम है.

आजादी से ही तो आदमी सबसे ज्यादा डरता है. पूरी दुनिया में नब्बे प्रतिशत लोग धार्मिक क्यों है? क्योंकी वो सब अकेले खड़ा होने से घबराते हैं. भीड़ में एक सुरक्षा का भाव है.

जिन्न की दिक्कत क्या है? वह यह है कि उसने पूरे जीवन को नकार कर सिर्फ एक काम को पकड़ लिया. ऐसे ही धार्मिक आदमी ने उन मान्यताओं को कस कर पकड़ लिया जो हजारों साल पहले बनाई गईं थी. बस उन्हीं को यांत्रिक तरीके से दोहराए जा रहा है और दोहराने से आदमी की मौत हो जाती है.

जिन्न की दिक्कत यह है कि वह अपनी मानसिकता को **ब्रेक** ही नहीं दे रहा. उसे लगातार काम चाहिए. अगर वह कुछ क्षण का **ब्रेक** दे पाए तो उसको शायद यह समझ आ जाए कि जीवन में और भी बहुत कुछ है जो करने के काबिल है. अगर आपकी पकड़ अंबेडकर जी पर थोड़ी ढीली पड़े तो आपको समाज में कई और महापुरुष नज़र आने लगेंगे.

इसी तरह से धार्मिक आदमी अपने विचारों या विश्वासों को कभी **ब्रेक** नहीं देता इसलिए उसे कुछ और सूझता ही नहीं. एक भीम राव अंबेडकर को चाहने वाला दिन-रात फेसबुक पर भीमराव की फोटो ही चेपे जा रहा है जबकि भीम राव अंबेडकर जैसे महापुरुष तो और भी बहुत होंगे. यह भी धार्मिक अंधविश्वास जैसा ही अंधविश्वास है. दोनों का एक जैसा जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है.

दोनों मन में जकड़न पैदा करते हैं, दोनों ही बराबर घातक हैं. ऐसे ही नानक जी, श्री राम, बुद्ध समाज के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं. इसी वजह से इनका धर्म के ठेकेदार और नेता लोग राजनीति के लिए फायदा उठा रहे हैं जिससे नफरत ही पैदा हो रही है. अतीत जीवन में हमेशा कड़वाहट, वैमनस्य और अवसाद पैदा करता है.

बस आप अपने आपसे ईमानदारी से एक सवाल करो कि आपने भीम राव को ही क्यों पकड़ा? किसी और को क्यों नहीं? यदि जवाब यह मिले कि आपने भीम राव को इसलिए पकड़ा है क्योंकि वह भी दलित थे और आप भी दलित हैं तो यह सरासर एक बहुत बड़ा अंधविश्वास है. फिर हम समाज को एक उग्रवादी से भी ज्यादा नुकसान पहुंचा रहे हैं. फिर हम सांप्रदायिक हैं और समाज में जहर घोल रहे हैं.

यह बार बार एक ही विचार को आगे लाना, एक ही आदमी या गुरु पर गर्व किये जाना बांस पर चढ़ना है. इसमें से आज तक न तो कुछ निकला और न ही आगे कुछ निकलेगा. यह एक तरह की आत्महत्या है. सारी उम्र हम मौत को ढोते रहते हैं और जाते हुए यह मौत अपने बच्चों को पकड़ा जाते हैं और इसको हम हमारी पवित्र संस्कृति कहते हैं.

सोचो, जिस आदमी ने कभी बुर्क़ा दिया होगा, अगर वह आज धरती पर आ जाए तो उसका सिर शर्म से झुक जाएगा कि इन लोगों को मैं जहां हजार साल पहले छोड़कर गया था, ये लोग आज भी वहीं खड़े हैं.

मनु ने सैंकड़ो साल पहले चार वर्ण का सिद्धांत दिया जो आज भी बदस्तूर जारी है. अगर गुरु गोविंद सिंह जी आज धरती पर आ जाएं तो उनको महसूस होगा कि उनका सिख आज भी वही खड़ा है जहां वह उनको तीन सौ साल पहले छोड़कर गए थे. कमाल है, हम जरा भी नहीं बदले, बहुत वफ़ादार हैं हम. विचार की जकड़न ही मौत है. बाकी जीवन को छोड़कर, बाकी गुरुओं को छोड़कर एक को पकड़ना, बांस को पकड़ना है और यही मौत है.

अतीत के प्रति ईमानदार होने की क्यों जरूरत नहीं?

हमारे अंदर सबसे बड़ी कमी यह है कि हम दूसरों के प्रति ईमानदार होना चाहते हैं. किसी आदमी ने हमें बुर्का दे दिया तो हम हमेशा कोशिश करेंगे कि हम उसका

दिया हुआ बुर्का न उतारें. शायद हम उसका सम्मान करना चाहते हैं चाहे उसको हमने कभी देखा भी नहीं. हम अपने प्रति ईमानदार न होकर उस आदमी या गुरु के प्रति ईमानदार होने की कोशिश करते हैं.

हम बुर्क़ा डालकर, पगड़ी बांधकर अपने फ़क़ीर या गुरु का सम्मान कैसे कर सकते हैं जबकि हमने तो उसको देखा ही नहीं. महज किसी से सुनकर हम किसी को अपना जीवन कैसे समर्पित कर सकते हैं? यह तो एक कपोल कल्पना है. यह तो बांस पर चढ़ने जैसी प्रक्रिया है. जब हम अपने बेटे को नहीं समझ सकते जिसको हमने जन्म दिया तो एक हजार साल पहले जो कोई महापुरुष हुआ, उसको हम कैसे समझ सकते हैं?

मान लो मेरा बेटा मेरी तरह व्यवहार करने लगे तो कैसा लगेगा? जैसे वह कहे कि पापा मैं भी वही जूते ख़रीद कर लाऊंगा जो आपने डाले हैं. वह अपने बालों का स्टाइल भी मेरे जैसा बना ले. वह ठीक वैसा व्यवहार करने लगे जैसा मैं करता हूं. वह मेरी तरह कपड़े पहनने लगे, वह कहे कि वह सब्जी भी वही खाएगा जो उसका पापा खाता है.

अगर वह मेरी नकल करने लगे तो यह मेरे लिए एक चिंता का विषय होगा क्योंकि मुझे लगेगा कि मेरा बेटा अपनी खुद की जिंदगी तो जी ही नहीं रहा, वह तो मेरी नकल कर रहा है. सोचो, अगर सभी लोग अपने मां-बाप जैसा व्यवहार करने में जुट जाएं तो यह कितना चिंताजनक होगा?

सभी लोग कहें कि हमारे तो गुरु बहुत महान थे, कोई कहे हमारे फ़क़ीर बहुत महान थे. इसलिए सब इस प्रयास में दिन-रात जुट जाएं कि किसी तरह से वही किया जाए जो हमारे गुरुओं ने किया या सोचा तो देखना समाज में एक संकट पैदा हो जाएगा. समाज बे-जान हो जाएगा.

क्योंकि कोई अपने जैसा होने में नहीं लगा. हर कोई किसी दूसरे जैसा होने में लगा है. वैसे तो यह बिल्कुल संभव नहीं कि हम किसी दूसरे जैसा हो जाएं लेकिन

अगर एक प्रतिशत भी संभावना हो और बहुत सारा समाज अपने पूर्वजों जैसा, गुरुओं और फकीरों जैसा होने में कामयाब हो भी जाए तो यह समाज बहुत ही नीरस होगा.

अब मैं अपने पिता जैसा कभी नहीं हो सकता क्योंकि उनका जीवन उन हालातों के अनुसार ठीक था. आज जैसी मैं जिंदगी जी रहा हूं वह मेरे पिता जी की जिंदगी से बिल्कुल मेल नहीं खाती. मैं उन जैसे कपड़े नहीं डालता, मैं उन जैसी आजीविका का साधन नहीं अपनाए हुआ. मेरी सोच भी उनसे अलग है. मेरा रहन-सहन भी उनसे बिल्कुल विपरीत है.

अब मेरे समय में, जब मैं छोटा बच्चा था तो मेरे मनोरंजन का एक ही साधन था और वह था पेड़ों पर चढ़ना. हम स्कूल से आते तो बैग फैंककर पेड़ों पर चढ़ जाते और हमें इसमें बहुत आनंद आता था.

अब अगर मेरा बेटा कहे कि मेरे पापा पेड़ों पर चढ़ता था इसलिए मैं भी पेड़ों पर चढ़ूंगा तो यह बहुत चिंता का विषय बन जाएगा. तब जब हम पेड़ों पर चढ़ते थे तो किसी को अजीब नहीं लगता था क्योंकि तब वही जिंदगी थी. तब हमारे पास मनोरंजन के और विकल्प नहीं थे. लेकिन अगर आज मेरे कॉलेज के प्रांगण में लोगों को मेरा बेटा पेड़ों पर चढ़ता नज़र आए तो कैसा लगेगा?

मान लो, लोग अगर पूछें कि आपका बेटा पेड़ों पर क्यों चढ़ता है? मैं कहूं कि मैं पेड़ों पर चढ़ता था इसलिए मेरा बेटा भी चढ़ता है. यह मुझे बहुत प्यार करता है, यह मेरी इज्जत करता है. यह मेरे पदचिन्हों पर चल रहा है. अब लोगों को आज बिल्कुल समझ नहीं आएगा कि बाप की तरह पेड़ों पर चढ़ना बाप की इज्जत करना कैसे हुआ?

मेरे दोस्तों के बेटे तो हर वक्त मोबाइल में लगे रहते हैं और अगर मेरा बेटा एक शहर में वह भी एक कॉलेज के प्रांगण में पेड़ों पर चढ़ता नज़र आए तो कितना

अटपटा लगेगा? मैं कॉलेज प्रांगण इसलिए कह रहा हूं क्योंकि मैं कॉलेज के प्रांगण में ही रहता हूं.

सोचो, अगर बेटा बाप वाली हरकतें करने लगे तो समझो वह पाषाण युग में जी रहा है. अब मैं कॉलेज में रोज साइकिल पर जाता हूं और मेरा बेटा देखे कि उसका पापा तो रोज साइकिल पर जाता है और वह भी एक साइकिल खरीद ले और सारा दिन बाजार में साइकिल पर घूमता नज़र आए.

धीरे-धीरे लोग उसे पहचानने लगेंगे कि यह तो जोगा सिंह का बेटा है. धीरे धीरे उसकी पहचान मेरी वजह से हो जाएगी. उसको देखते ही लोग कहेंगे कि देखो वह जोगा सिंह का बेटा जा रहा है. उसकी अपनी पहचान जन्म ही नहीं लेगी क्योंकि उसने अपना कोई फैसला ही नहीं लिया. सोचो, अगर ऐसा हो तो यह एक पिता के लिए कितना चिंता का विषय होगा.

अगर एक बाप को चिंता होगी तो क्या एक गुरु या देवता को चिंता नहीं होगी कि उसके चेले दिन-रात उस जैसा बनने में लगे हैं.

अब ज्यादातर जो लोग साइकिल चलाते हैं वो शायद इसलिए क्योंकि वो कार नहीं खरीद सकते लेकिन मैंने पिछले दस साल में छः, सात बढ़िया बढ़िया गाड़ियां ली और दिन-रात इतना दौड़ाया कि वो सब कबाड़ा हो गईं. मैं अगर साइकिल चला रहा हूं तो शायद इसलिए कि मैं कारों से ऊब गया हूं. अब बताओ अगर मेरा बेटा मुझको देखकर साइकिल खरीद ले तो यह कितना बड़ा अनर्थ होगा?

मेरा अनुभव मेरे बेटे का कैसे हो सकता है? उसको जीवन अपनी शर्तों पर जीना होगा. देखिए, इस ब्रह्मांड में कहीं कोई एक छोटी सी जगह खाली थी और उसको भरने के लिए सिर्फ आपको चुना गया लेकिन आप हैं कि कहते हैं कि मै अपने पिता जैसा बनूंगा, अंबेडकर जैसा बनूंगा, बुद्ध जैसा बनूंगा. आपका जन्म अपने आपमे अंबेडकर, मार्क्स, गांधी, भगत सिंह से कोई छोटी घटना नहीं है. आपको किसी एक का सहारा लेने की जरूरत नहीं.

अब मेरे जीवन में अथाह संघर्ष रहा और मैं अंत में साइकिल पर आ गया लेकिन मेरे बेटे ने तो जिंदगी में अभी कुछ किया ही नहीं. मेरे हाथ से करोड़ों रुपये गए और करोड़ों आए तब जाकर मुझे साइकिल पसंद आई लेकिन बेटे ने तो कुछ किया ही नहीं.

अब अगर आपने बहुत सारा पैसा कमाया है तभी तो आप यह बात कह सकते हैं कि पैसा वैसा कुछ नहीं होता. बिना पैसा कमाए आपको यह बात कहने का कोई हक नहीं. अब अगर बेटा यह कहे कि साइकिल सेहत के लिए अच्छा होता है तो यह एक अंधविश्वास भी हो सकता है. ऐसा ही अंधविश्वास वह है जब आप झट से कह देते हो कि बुद्ध ने ठीक ही कहा है कि 'अप्प दीपो भव'.

देखिए, 'अप्प दीपो भव' बुद्ध का अनुभव हो सकता है आपका नहीं. आपको यही बात कहने का कोई हक नहीं. आपकी जिंदगी में अगर जीवन का कोई सुंदर सा फूल खिला होता तो आपके मुंह से यह बुद्ध की सड़ी-गली सी बात न निकलती. फिर आप कोई नई बात कहते जैसे मेरी जिंदगी से 'ब्रेक द रूल' निकला है.

देखिए, मैं बचपन में कई साल स्कूल साइकिल पर गया. फिर मैंने बहुत मोटरसाइकिल चलाई. फिर मैंने दौड़ा दौड़ा कर अच्छी अच्छी कारें तोड़ डाली. मुझे याद है एक बार मुझे जो कार चाहिए थी वह मेरे राज्य में छः महीने की वेटिंग में थी तो मैं वह कार शिमला से नगद लेकर आया था. आज जो फीलिंग मुझे साइकिल चलाकर आती है वही फीलिंग मेरा बेटा नहीं ले सकता.

हम सब तो दिन-रात अपने गुरु, फ़क़ीर जैसा बनने में लगे हैं. उसी जैसी ड्रेस डालते हैं, उसने जो खाने के लिए कहा वही बार बार रट लगाते हैं कि हमारे महापुरुष ने यह खाने के लिए कहा था. अब एक बात तो बिल्कुल साफ है कि अगर हम वो करने लगे जो हमारे गुरुओं, फकीरों ने किया तो यह महज एक मूर्खता होगी. अगर हम ऐसा करते हैं तो इसका सीधा सीधा मतलब यह है कि हमारे अंदर अभी तक कॉमन सेंस भी नहीं पनपी.

देखिए, उनके बनाए आदर्शों पर चलने को धर्म नहीं कहते. धर्म गुरु या फ़क़ीर जैसा बनने में नहीं बल्कि उससे अलग होने में निहित है. वह तो बिना वजह कहीं पहाड़ों में घूमने चला गया लेकिन हमने उस जगह को ही पकड़ लिया. हम पागलों की तरह उस जगह के ही चक्कर काटे जा रहे हैं. अब किसी ने हमें बुर्क़ा दिया तो यह उस वक्त तो ठीक रहा होगा लेकिन बुर्क़ा देने वाले को क्या पता था कि हमारे लिए यह एक मानसिक रोग बन जाएगा.

अब गुरु साहिब ने सिखों को एक नई ड्रेस दी, एक नई शक्ल दी और यह एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक कदम था. लेकिन उनको क्या पता था कि सिख उसी ड्रेस को पकड़ लेंगे. अब हम अपनी बेटी को सुबह स्कूल जाने के लिए एक स्कूल ड्रेस डालते हैं तो आपको उसको यह कहने की जरूरत नहीं पड़ती कि बेटा इसको वापिस आकर उतार देना. क्या कभी मां को अपने बच्चे को यह निर्देश देने की जरूरत पड़ी कि बेटा स्कूल से जब घर आओ तो यह ड्रेस उतार देना? नहीं, कभी नहीं.

मां यह मानकर चलती है कि अगर बेटे को स्कूल ड्रेस डाली है तो जाहिर है वह घर आकर इसे उतार ही देगा. यह बात बेटे को समझाने की जरूरत बिल्कुल नहीं पड़ती. बच्चा जब वापस घर आएगा तो सबसे पहले अपने आप ड्रेस को उतार कर फेंकता है. वह सारा दिन उस ड्रेस में असहज महसूस करता रहता है और जब घर आता है तो सबसे पहले स्कूल ड्रेस ही उतारता है.

दिन भर ड्रेस को डालकर वह ऊब चुका होता है और जब वह ड्रेस को उतार फेंकता है तो बहुत राहत महसूस करता है. लेकिन हममें से कोई भी धार्मिक ड्रेस उतारने की कभी हिम्मत नहीं करता. हम कभी धार्मिक चिन्हों और संकेतों को तिलांजलि नहीं दे पाते. ये धार्मिक पोशाकें, चिन्ह हमारी जिंदगी में बहुत बोरियत पैदा करते हैं लेकिन हमारे अंदर इतना साहस नहीं होता कि हम इनको उतार फेंके.

हम अंदर से भयभीत हैं. अब गुरु साहिब ने जब सिखों को एक अद्भुत ड्रेस दी थी तो शायद उन्होंने भी माँ की तरह बताना जरूरी नहीं समझा कि यह ड्रेस हमेशा के लिए नहीं है. याद रहे, मैं यहां गुरु साहिब की किसी बात को गलत नहीं सिद्ध कर रहा. इतनी मेरी औकात है नहीं. लेकिन सोच और शरीर में बदलाव तो जरूरी है और यह भी गुरु साहिब ने ही कहा है.

वो सब अद्वितीय थे और उन्होंने जो किया वह उस वक्त निश्चित ही बहुत महान था. मैं जो आलोचना कर रहा हूं वह मेरी खुद की आलोचना है, मेरे समाज की आलोचना है. मैंने जब गहराई में जाकर देखा कि हमारे पास इतने गुरु हैं, फ़क़ीर हैं, देवता हैं, इतने ग्रंथ है फिर भी हम बेकार सी जिंदगी क्यों जी रहे हैं? क्यों गुरु साहिब की कौम आज एक नशेड़ी कौम के रूप में जानी जाती है? क्यों सारा पंजाब शारीरिक तौर से बीमार है?

मैंने सुना है कि पंजाब में रोज बीस मौतें कैंसर से होती हैं. अगर देखा जाए तो पूरे भारत में सबसे ज्यादा भ्रष्टाचार और अत्याचार पंजाब में हैं जो सच बात है. सोचो, हमारे गुरुओं ने इतनी कुर्बानियां दी ताकि एक नए समाज का निर्माण हो सके. लेकिन सवाल तो यह है कि क्या कोई नया समाज निर्मित हुआ? मेरे हिसाब से बिल्कुल नहीं. अगर हम ध्यान से देखें तो हिंदुओं की ऐसी कोई कुरीति नहीं जो सिखों में न मिले.

तो फिर ऐसे में यह शक तो होना लाजमी है कि हम कहीं तो कोई भूल कर रहे हैं. कहीं ज़रूर कोई गलती हो रही है. और यह गलती यह है कि हम सब अपने गुरुओं, फकीरों जैसा बनने में लगे हैं. अब दिक्कत यह है कि मनोविज्ञान के हिसाब से हम किसी और जैसे कभी नहीं हो सकते तो हमें इस गलती को सुधारना ही चाहिए.

यहां तक कि हम इस किताब में यह सिद्ध करेंगे कि हम किसी और के आदर्शों को कभी ग्रहण नहीं कर सकते. अगर ऐसा संभव होता तो आज हम स्वर्ग में होते

क्योंकि सारा समाज बदल चुका होता. लेकिन स्वर्ग तो यहीं धरती पर है. अब हम गुरुओं जैसा बनने में, उन जैसा होने में कोई कसर तो छोड़ नहीं रहे. हम पाठ भी करते हैं, पूजा भी करते हैं, तीर्थ यात्राएं भी करते हैं और हम अपने मज़हब के भी पक्के हैं. लेकिन सवाल यह है कि हमारी सोच में तो कोई बदलाव हुआ नहीं.

जरा सा भी अगर सोच में बदलाव होता तो हम दुनिया में भ्रष्टाचार में नंबर एक न होते. और अगर हम सब भ्रष्ट हैं तो जाहिर है हम बेईमान भी होंगे क्योंकि एक भ्रष्ट आदमी ईमानदार कैसे हो सकता है? अगर हम सब बेईमान हैं, भ्रष्ट हैं तो फिर सवाल यह है कि जो हमने आज तक धर्म-कर्म के नाम पर किया वह सब ठीक कैसे हुआ? जब परिणाम ही गलत हैं तो जाहिर है जो हमने धर्म के नाम पर आज तक किया वह गलत था.

आज हर आदमी शारीरिक और मानसिक रूप से बीमार है. सभी धर्म आपस में लड़ रहे हैं. हमारे देश के बीस प्रतिशत लोग आज भी भूखे पेट सो जाते हैं. हमारी अस्सी प्रतिशत जनता महज दो सौ रुपये रोज की कमाई पर जीवन बसर करने पर मजबूर है. हमारा कोई सिस्टम ठीक से काम नहीं कर रहा. हमारी न तो सड़कें दुरुस्त हैं और न ही अस्पताल.

चारों तरफ अशांति है. हमारे थाने, जेलों और कोर्टों में कहीं पैर रखने को जगह नहीं बची. यहां हर समुदाय दूसरे समुदाय के विरुद्ध खड़ा है. बेरोजगारी में हम दुनिया में नंबर एक पर हैं. जनसंख्या अपने आप में बहुत बड़ा संकट बन गई है.

यही नहीं, इस सबके चलते हम सब वोट मुद्दे पर कभी नहीं देते. हम वोट आज भी जाति और धर्म के नाम पर देते हैं. आज आलम यह है कि एक मूर्ख से मूर्ख आदमी भी हमें धर्म की गुहार लगाकर हमारा वोट ले सकता है और देश का प्रधानमंत्री बन सकता है.

यानि कि हमारा कोई चरित्र ही नहीं पनपा. यानि कि हमें कोई भी मूर्ख बना सकता है. यानि कि हमारा कोई स्व-विवेक नहीं पैदा हुआ. हम किसी के भी

बहकावे में आ सकते हैं. अब जब हमारा कोई चरित्र ही नहीं पनपा, हमारी जब कोई सोच ही नहीं पनपी, हमारा जब कोई विवेक ही नहीं पनपा तो फिर इसका मतलब साफ साफ यह है कि हम आज तक जो भी करते आ रहे थे वह गलत था.

हम फिर यह जो सब धर्म-कर्म का नाटक करते हैं, इसका क्या फायदा? ज़रूर हम गलत रास्ते पर चल निकले हैं क्योंकि सारे परिणाम उल्टे आ रहे हैं. अगर जरा से भी परिणाम सही होते तो फिर हमें खुद की हरकतों पर शक करने की जरूरत न पड़ती. अब जब सारे परिणाम उलट हैं तो फिर हमें अपनी हर बात पर शक करना होगा और जो भी आज तक करते आए हैं उस पर **ब्रेक** लगानी होगी.

क्योंकि अगर हम वही करते जाएंगे तो परिणाम भी वही आएंगे जो पहले आ रहे थे. इतनी छोटी सी हमारी जिंदगी है उसमें भी हम सारी उम्र वह करते रहते हैं जो नहीं करना चाहिए. हमने कोई हजार साल तो जीना नहीं (जो सच है) कि गलत चीजों को करते रहें. आज ही इन सब फ़ालतू की चीजों को **ब्रेक** लगानी होगी ताकि एक नई शुरुआत हो सके.

अब यह सब कॉमन सेंस की बात है कि जब हम अतीत को सही सिद्ध करने में लग जाते हैं तो सबसे पहले हमारे अंदर कॉमन सेंस खत्म हो जाती है. हम यहां अपने प्रति, वर्तमान के प्रति ईमानदार न होकर, अतीत के प्रति, ऐसे लोगों के प्रति ईमानदार होने की चेष्टा कर रहे हैं जो इस दुनिया में हैं ही नहीं.

हमारा धर्म अब यह जानने में नहीं है कि सौ साल पहले किसी फ़क़ीर या गुरु ने क्या किया? नहीं, हमारा धर्म इसमें निहित है कि अब, आज हमें क्या चाहिए? सबसे ज्यादा यह मायने रखता है कि आज हमारे लिए क्या महत्वपूर्ण है?

अब मान लो मैं अपनी बेटी को स्कूल ड्रेस डालकर भेजता हूं और कोई ऐसी दुर्घटना हुई कि मैं अपनी बेटी से हमेशा के लिए अलग हो गया. मान लो, मैं बीस साल बाद अपनी बेटी को अचानक मिलता हूं जिसकी अब शादी हो चुकी है और

मैं बिल्कुल बूढ़ा हो गया हूं. मैं अपनी बेटी को मिलकर बहुत खुश होता हूं लेकिन मुझे एक बहुत बड़ी हैरानी होती है कि बेटी ने आज भी वही स्कूल ड्रेस डाली हुई है जो कभी मैंने उसे बीस साल पहले स्कूल जाने के लिए पहनाई थी.

मैं पूछता हूं कि बेटी तुमने यह ड्रेस उतारी नहीं? बेटी कहे कि मैंने यह ड्रेस इसलिए नहीं उतारी क्योंकि यह ड्रेस आपने मुझे पहनाई थी और मैं आपको प्यार करती हूं, आपकी इज्जत करती हूं. मुझे आप पर गर्व है कि आपने मुझे जन्म दिया था.

अब सोचो, मुझे खुशी होगी या फिर मुझे सदमा लगेगा. मुझे लगेगा कि मेरी बेटी ने अपना जीवन तो जिया ही नहीं. यह तो हमेशा मेरे प्रति ईमानदार बनी रही. इसमें तो कॉमन सेंस भी नहीं पनपी. बताओ, आज के सिख को देखकर गुरु साहिब खुश होंगे या सदमे में चले जाएंगे? इससे हमें सीख लेने की जरूरत है, अपनी जिंदगी आजादी के साथ जीने की, एक नए बदलाव के साथ.

हम हमेशा कुछ बनने में क्यों लगे रहते हैं?

अगर हम ध्यान से देखें तो मानव हजारों सालों से कुछ बनने में लगा है जबकि उसको कुछ बनना नहीं, बस होना है. उसको वैसा ही होना है जैसा वह है. उदाहरण के तौर पर एक हिरण कभी कुछ बनने की कोशिश नहीं करता. वह वैसा ही दिखता है जैसा वह है. लेकिन आदमी को हमेशा लगता है कि उसमें कोई ना कोई गड़बड़ है. इसलिए वह हमेशा बनने, संवरने में लगा रहता है.

मूल समस्या कहां है? मूल समस्या यह है कि आदमी की एक याददाश्त है जो उसे हमेशा दुत्कारती रहती है कि देखो आपके गुरु, आपके फ़क़ीर ने इतना बड़ा इतिहास रचा लेकिन तू तो निक्कमा है. इसीलिए आदमी हमेशा खुद को हीन समझता रहता है और वह यह भ्रम पाल लेता है कि उसको अपने गुरु या फ़क़ीर जैसा ही बनना है. इसलिए, वह अपने गुरु या फ़क़ीर की तरह दाढ़ी रखेगा, उसी जैसी ड्रेस डालेगा.

यहीं सारी गड़बड़ हो जाती है. उसको सबसे बड़ा यह भ्रम हो जाता है कि मुझे गुरुओं/देवताओं के दिखाए मार्ग पर चलना है. वह फिर हमेशा इस कोशिश में रहता है कि किसी तरह अपने महापुरुषों की बात पूरी की जाए. इस तरह से आदमी जिंदगी भर एक काल्पनिक सत्य के पीछे पड़ा रहता है.

उसको यह कभी समझ नहीं आता कि हमें एक इंसान होने के लिए कुछ नहीं करना. ठीक वैसे ही जैसे एक हिरण को हिरण होने के लिए कुछ नहीं करना. हिरण तो वह पहले से ही है और यही अध्यात्म है, यही ध्यान है कि हम जैसे हैं वैसे रहें. यानि कि हम बस अपने स्वभाव में रहें, बाकी सब बकवास है.

बताओ, क्या एक हिरण को हिरण होने में कोई ग्रंथ या फ़क़ीर धारण करने की जरूरत है? नहीं ना? क्या उसको बाल रखने, टोपी पहनने की जरूरत है? बिल्कुल नहीं! तो फिर हर आदमी क्यों आध्यात्मिक होने में लगा है? क्योंकि वह किसी

दूसरे जैसा होने में लगा है. वह एक अच्छा हिन्दू बनना चाहता है, एक अच्छा सिख बनना चाहता है.

कल्पना कीजिये कि धरती पर सिर्फ आप हैं. आपके सिवाए कोई जीव नहीं, कोई इंसान नहीं तो क्या फिर भी आप पगड़ी बांधने, टोपी पहनने, दाढ़ी रखने की जरूरत समझोगे? नहीं! यानि कि यह कोई आखिरी सत्य नहीं बल्कि यह सब सिर्फ एक सीखा हुआ व्यवहार है.

यानि कि जो वह है, आदमी उससे कुछ अलग बनना चाहता है. जब वह एक अच्छा हिन्दू बनने पर उतर आता है तो इसका मतलब वह उन सभी हिन्दू देवताओं, संतो, ग्रंथो से भी जुड़ेगा. वह फिर हिन्दुओं के हर देवता को सही साबित करने पर तुला रहेगा. फिर बाकी सभी चीजों के प्रति वह अंधा हो जाएगा.

यहां गड़बड़ यह हुई कि उसने एक जड़ चीज से नाता जोड़ लिया. सारा अतीत जड़ क्यों है? क्योंकि यह अब एक अंतिम सत्य है और इसमें अब कोई बदलाव नहीं हो सकता और हम इसके साथ कोई इंटरेक्शन/तालमेल भी नहीं कर सकते. अब जब हम इस जड़ अतीत से जुड़ते हैं तो हम भी जड़ हो जाते हैं. फिर यह अतीत हमें बांटने लगता है. फिर जीवन से समझ खत्म हो जाती है.

याद रहे, हमारा शरीर अतीत में नहीं जीता, यह वर्तमान में जीता है. क्या हम अपने शरीर के अतीत को ढूंढ सकते हैं? नहीं! जब हमारे शरीर का कोई अतीत नहीं तो हमारे समुदाय का भी कोई अतीत कैसे हो सकता है? शरीर को जीने के लिए खुद के अतीत के अवशेष नहीं रखने पड़ते. जब दिल धडक रहा होता है तो यह अपने साथ अतीत की याददाश्त नहीं रखता.

आप कहोगे कि यह जो शरीर हम देख रहे हैं यह तो अतीत की देन ही है. हां, देन है लेकिन यह जो दिख रहा है यह तो सिर्फ वर्तमान है. यह जो दिख रहा है यही सब कुछ है. इसके पीछे कुछ नहीं है. यह जो वर्तमान है इसके अतीत का किसी को नहीं पता. बस हम किसी पंडित-पुरोहित से कहानियां सुनकर अपने

अतीत की अपने मन में एक छवि बना लेते हैं और यही मानसिक छवियां हमें मानव होने से रोकती हैं.

लुईस ग्लूक कहती है कि हम सिर्फ एक बार दुनिया को देखते हैं, बचपन में. बाकी सब स्मृति है.

यह स्मृति हमारी समझ को जीवन रूपी पटरी से उतार देती हैं और हमें फिर हमेशा लगता है कि हमारे अंदर कोई गड़बड़ है. फिर हम बहुत सारी धार्मिक यात्राएं करते हैं, पाठ करते हैं, रोजे रखते हैं, कीर्तन करते हैं लेकिन फिर भी कभी हिरण की तरह एक इंसान नहीं बन पाते. हम सारी उम्र कुछ बनने में, कुछ हासिल करने में लगे रहते हैं पर कभी कुछ हासिल नहीं होता.

कमाल की बात यह है कि हजारों सालों के बाद भी आदमी बद से बदतर होता जा रहा है लेकिन फिर भी वह अपनी सोच पर शक नहीं करता. अगर हमें हिरण जैसा, खरगोश जैसा भोला सा, निरीह प्राणी बनना है तो कुछ नहीं करना. कोई योग, कोई ध्यान, कोई धर्म, कोई साधना नहीं चाहिए. यूं कहिए, कुछ करना ही नहीं. बल्कि जो आज तक करते आये हैं बस उसको **ब्रेक** लगानी है.

हमारी जितनी भी धार्मिक और सामाजिक मान्यताएं हैं, विश्वास हैं उनको **ब्रेक** लगानी है क्योंकि जीवन बहुत छोटा है. हमारे पास फालतू के कर्मकांडों में लिप्त होने का वक्त नहीं है. जब हम सब कुछ करना छोड़ देंगे, तो जो बचेगा वह होगा 'इंसान'. वह न तो हिरण की तरह अच्छा होगा न ही बुरा. बस वह हिरण होगा. यह पूरा ब्रह्माण्ड, सिर्फ आदमी को छोड़कर, वैसा ही है जैसा वह है.

पूरा ब्रह्माण्ड सिर्फ प्रकट हो रहा है. पूरा ब्रह्माण्ड उत्सव में क्यों है? क्योंकि वहां कोई याददाश्त नहीं, कोई अतीत नहीं. वहां सिर्फ वर्तमान है. कैसे हमारा दिल सिर्फ वर्तमान में धड़कता है? यह अतीत में नहीं धड़कता. आदमी की एक ही दिक्कत है और वह है उसकी याददाश्त. अब एक सिख का अतीत पूर्ण रूप से

उसको जीने का एक खास ढांचा या **रूल** देता है. बस अगर सिख होना है तो उस सांचे में फिट होना है. अगर हम फिट नहीं हुए तो हम सिख नहीं.

हां, अगर मैं अपनी धार्मिक मर्यादा को निभाता हूं, मैं सारे धार्मिक कर्मकांड करता हूं, तो फिर मैं चाहे एक चोर हूं तब भी मैं एक सम्मानित आदमी हो सकता हूं. सोच कर देखो, हर आदमी को एक दलित, एक सिख, एक हिन्दू, एक मुस्लिम होना जरूरी है. इसके बिना हमारी पहचान ही नहीं बनती. हम अकेले खड़े ही नहीं हो सकते.

अब एक दलित प्रोफेसर बन जाता है लेकिन फिर भी वो दलित ही रहता है. फिर भी वह एक स्वतंत्र इंसान नहीं बन पाता. फिर भी उसको आप ब्राह्मणों को कोसता पाओगे. फिर भी वह दलितों के हक की ही बात करेगा. जबकि उसे तो अब आगे सरक जाना चाहिए था लेकिन उसे आज भी उसी पुरानी दलदल में लेटने में मजा आता है. एक ऐसा समाज जहां हर आदमी की पहचान अतीत से है उसमें एक स्वतंत्र आदमी के लिए सांस लेना भी मुश्किल है.

जब ऐसा है, जब हर आदमी है ही झूठा तो फिर कोई सच्चाई कैसे जन्म ले सकती है? यही कारण है समाज बद से बदतर होता जा रहा है क्योंकि कोई आदमी जीने के लिए स्वतंत्र नहीं. हर कोई निर्देश पीछे से ले रहा है और पीछे कुछ है ही नहीं. जैसे मेरे शरीर के पीछे कुछ नहीं, जैसे मेरे दिल के पीछे कुछ नहीं!

इसका महत्व नहीं कि हमारे पीछे क्या है और आगे क्या है? महत्व इस चीज का है कि हमारे अंदर क्या है?

हमारा दिल कल कैसा था यह अब मात्र एक कल्पना है क्योंकि जो था उसको हम अब पकड़ नहीं सकते क्योंकि जो था वह रूपान्तरित होकर कुछ और बन गया. अगर हम अपने महापुरुषों को एक राख की ढेरी मान लें तो हम भी उसी वक्त एक खरगोश, एक हिरण की तरह आध्यात्मिक हो जाएंगे.

जीवन मूलतः अच्छा है, पर हम बुरे क्यों हो गए?

हमारे देश में आदमी की हालत इतनी पतली क्यों हुई? कहां चूक हुई? जो इंसान चांद पर पहुंच गया, परमाणु बम बना दिए, जो आदमी मोबाइल बना सकता है, हवाई जहाज बना सकता है वह नफरत को क्यों नहीं मिटा सका? हिंसा का अंत क्यों नहीं कर सका? वह आपस में प्यार क्यों नहीं पैदा कर सका?

उसने धर्म बनाए भाईचारा पैदा करने के लिए लेकिन अलग अलग धर्मों में तो क्या तालमेल होना था, एक धर्म के लोग ही आपस में मिल-बैठ कर नहीं रह सकते. दो गावों के लोग आपस में प्यार नहीं करते, एक मोहल्ले के लोग दूसरे मोहल्ले के लोगों से द्वेष करते हैं. एक ही माँ-बाप के बच्चे लड़ लड़ के मर जाते हैं.

अब मुसलमान कहते हैं कि हिन्दू उनसे भेदभाव करते हैं लेकिन उनसे कोई यह पूछे कि शिया और सुन्नी क्यों आपस में लड़ लड़ कर मर रहे हैं? तो कोई जवाब नहीं मिलेगा. अब हिन्दू कहेंगे कि मुसलमान इस देश को अपना देश नहीं मानते लेकिन यही हिन्दू अपने ही भाइयों जैसे दलितों का दिन-रात शोषण करते हैं. अब जो अपने ही भाइयों को नहीं बख्शाता, वह मुस्लिमों को क्या बख्शेगा?

अब सिख धर्म बिल्कुल नया है और उसमें जात-पात की बिल्कुल मनाही है लेकिन हम इसमें भी कई तरह के स्तर और ग्रुप देख सकते हैं और उनका हर तरह से शोषण भी होता है. तो फिर क्या हासिल किया हमने आजतक? कहां चूक हुई आदमी से कि हम एक ऐसे मकड़-जाल में फंसे हैं कि बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं नज़र आता. आज हजारों सालों की सभ्यता के बाद आदमी के पास सब कुछ है बस एक इंसानियत ही नहीं बची.

जीवन मूलतः अच्छा है लेकिन हम बुरे क्यों हुए जबकि साधु-संत दिन-रात प्रवचन भी कर रहे हैं, हर आदमी का कोई न कोई गुरु भी है और हर आदमी के घर में एक मंदिर भी है. देखिये, अगर हम एक मेंढक को एक बर्तन में रखकर पानी में

उबालने लगें, तो ज्यों ज्यों पानी गर्म होगा, त्यों त्यों मेंढक इसे सहन करने लगेगा और इससे तालमेल बैठाने लगेगा.

मेंढक चाहे तो बाहर छलांग मार सकता है, पर वह नहीं मारता क्योंकि उसको गर्म होते पानी से तालमेल बैठाने में मजा आता है. लेकिन जब पानी उबलने लगेगा तो मेंढक बाहर छलांग मारने की कोशिश करेगा, लेकिन वह बाहर कूद नहीं पायेगा क्योंकि तब तक उसकी सारी शक्ति गर्म पानी से तालमेल बनाने में खर्च हो चुकी होती है. क्योंकि वह गर्म पानी से तालमेल बैठाता रहा इसलिए अब वह बाहर कूद नहीं सकता और मर जाता है.

मनुष्य जाति को भी समय समय पर छलांग लगानी थी लेकिन इसने तो आज तक एक छलांग भी नहीं लगाई. परिणामस्वरूप वह हर तरह से लाचार हो चुकी है. अब कभी आदमी जंगली था और उस वक्त उसे व्यस्त करना था क्योंकि वह बंदर की औलाद था और उसकी पुरानी आदतें गयी नहीं थी. उस समय करने के लिए कोई भी काम नहीं था.

तब सोचा गया होगा कि चलो आदमी को किसी न किसी काम में लगाया जाए. आज तो आपने देखा होगा कि आदमी की आधी जिंदगी पढ़ाई में ही गुज़र जाती है और पचास साल की उम्र में उसको अनेकों बीमारियां घेर लेती हैं. लेकिन जंगली आदमी में तो बहुत ऊर्जा रही होगी और फिर ऐसे आदमी को संभाला कैसे जाता?

अब एक कक्षा में एक उद्दंड बच्चे को काबू करना ही मुश्किल होता है, और जहां सभी जंगली थे तो उनको काबू करना तो निहायत ही मुश्किल रहा होगा. तब कुछ सूझबूझ वाले लोगों ने आगे आकर भगवान और आत्मा का विचार दिया होगा ताकि किसी तरह से आदमी अपने आप को व्यस्त रख सके. धर्म के बहुत से नियम दिए गए होंगे जो कभी बहुत ही तर्कसंगत रहे होंगे.

अब इन नियमों में समय समय पर सुधार की जरूरत थी लेकिन लोगों में ऐसा भय पैदा किया गया होगा कि किसी की हिम्मत ही नहीं हुई कि वो कह पाते कि ये नियम बदलो. अब बताओ, तब लोग इतने काबिल कहां रहे होंगे कि वो एक ही झटके में और हमेशा के लिए सारे नियम सही बना देते. क्या एक ही झटके में कोई ऐसी कार बनाई जा सकती है जो हमेशा के लिए उत्तम हो?

नहीं, हर साल उस कार में नए नए सुधार सूझते रहते हैं और हर साल एक नया मॉडल देना पड़ता है. जो धार्मिक नियम दिए गए थे वो बिल्कुल जीवन के अनुकूल नहीं थे. तब का जंगली आदमी इतना काबिल कहां था कि वह सेक्स, औरत, धर्म, कर्म पर हमेशा चलने वाले **रूल** या सिद्धांत दे पाता. कुछ भी हो, यह एक अच्छी शुरुआत थी.

उस वक्त भ्रष्टाचार, बेईमानी, दहेज़ और युद्ध जैसी समस्याएं तो थी नहीं, इसलिए आदमी को भगवान्, आत्मा और स्वर्ग जैसे काल्पनिक मुद्दे दिए गए ताकि वो व्यस्त रहे. अब ज्यों ज्यों सभ्यता आगे बढ़ी तो इन धार्मिक धारणाओं के एक कार की तरह नए नए मॉडल आने चाहिए थे जो नहीं आये. आप ध्यान से देखो, क्या पिछले हजार, दो हजार साल में किसी सामाजिक मुद्दे जैसे सेक्स, औरत, प्यार, धर्म, कर्म, धन पर किसी गुरु या फकीर ने कोई नई बात कही? नहीं ना?

आज भी इन मुद्दों पर वही धारणाएं, वही विश्वास कायम हैं जो किसी ने दो हजार साल पहले कहे होंगे. यार, क्या तब का आदमी इतना सक्षम था कि वह इन मुद्दों पर ऐसी बातें कह देता कि फिर इनमें कभी बदलाव की जरूरत न पड़ती? दरअसल आदमी इतना भयभीत था कि वह इन धार्मिक नियमों को कभी चुनौती नहीं दे सका. उल्टा वह मेंढक की तरह इन नियमों के साथ तालमेल बनाने लगा.

ये नियम पवित्र थे इसलिए आदमी की सारी शक्ति इन नियमों को बनाये रखने में लग गयी. अगर हम ध्यान से देखें तो आज भी सारे धार्मिक नियम वही हैं जो कभी हजारों साल पहले जंगली आदमी ने बनाए थे. हमारे धर्म, सेक्स, औरत,

धन, शरीर और प्यार के प्रति नज़रिये में आज तक कोई मूलभूत बदलाव नहीं आया है.

किसी ने आज तक इन धार्मिक नियमों के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया. यही कारण है कि आज भी इंसान के स्वभाव में कोई मूलभूत बदलाव नहीं आया. आज भी इंसान पहले की तरह ईर्ष्यालु, बेईमान, हिंसक और लालची है. क्या हम दावे से कह सकते हैं कि आदिमानव आज के आदमी से ज्यादा बेईमान था? नहीं, उल्टा आज का मानव पहले वाले आदिमानव से कई गुना ज्यादा बेईमान है.

बल्कि वह और भी हिंसक और लालची होता जा रहा है. इसका कारण एक ही है कि धार्मिक नियमों को कभी किसी ने **ब्रेक** नहीं दी. वो यूं के यूं चलते आ रहे हैं और वक्त इतना ज्यादा बीत गया कि अब मेंढक की तरह बाहर छलांग मारने की इंसान में हिम्मत नहीं रही. अब अगर बीज पेड़ नहीं बनेगा तो आप क्या समझते हो कितने साल जी सकता है? आखिर वह गल-सड़ जायेगा और उसकी मौत हो जायेगी.

अगर बीज को जीवित रहना है तो उसको समय रहते छलांग लगानी होगी. यानि कि मिट्टी में जाना होगा. यानि कि संभावना रहने तक पेड़ को जन्म देना होगा. इंसान ने भगवान को एक बार ऐसा पकड़ा कि उसके बाद इसके बारे में कोई विचार ही नहीं किया कि यह ठीक है या गलत. अगर इंसान छलांग लगाता तो आज भगवान के एक कार और मोबाइल की तरह कई मॉडल होते.

क्या यह अच्छा न होता अगर रोज लाखों लोग धर्म बदलते और यह देखते कि आनंद किस में आएगा या कौन सा ठीक है? आज पता चलता कि तीस लाख हिंदुओं ने सिख धर्म अपना लिया. कल पता चलता कि बीस लाख मुस्लिमों ने हिन्दू धर्म अपना लिया.

धर्म कोई अच्छा नहीं. हां, धर्म फिर अच्छा हो सकता है जब आप एक को छोड़कर दूसरे को अपनाते हैं. धर्म बदलना मेंढ़क की छलांग के बराबर है. अब इनसे कोई

पूछे कि अगर सभी धर्म परमात्मा की तरफ ले जाते हैं तो धर्म बदलना इतना बड़ा पाप क्यों है?

आदमी के सारे विश्वास ऐसे ही हैं, इनमें अब कोई अंतर नहीं. बस उन्ही चीजों को दोहराया जा रहा है जो सदियों पहले कही गयी थी. यह दोहराने से जीवन में नीरसता आयी यानि कि तापमान बढ़ता गया और हम इसके आदी होते गए. अतः अब हमारी मौत हो जानी तय है. हमारे अंदर संवेदनशीलता ख़त्म हो गयी है.

अब लोगों को लाख समझाओ कि आपने गलत चीजों को पकड़ा हुआ है पर इनको समझ ही नहीं आता. कुछ को समझ आता भी है लेकिन कुछ कर नहीं सकते. कर क्यों नहीं सकते? क्योंकि समय रहते छलांग नहीं लगा सके. सहूलियत के लिए हालातों से तालमेल बैठाते रहे और आखिर में जीने की क्षमता ही खो बैठे. आदमी की सारी समस्याओं की जड़ धर्म है क्योंकि धर्म अंधा विश्वास करना सिखाता है. .

इसी अंधविश्वास के कारण आदमी दिन-रात नरक भोग रहा है. उसका जीवन बहुत दुविधा में है. आदमी बहुत जबरदस्त असुविधा में है लेकिन इस असुविधा को आदमी आज तक भांप नहीं पाया.

कैसे धर्म एक बिना दिमाग की भीड़ है?

याद है मुझे, एक बार यूनिवर्सिटी से अपनी डी.एम.सी. यानि कि अपना सर्टिफिकेट हाथों-हाथ निकलवाना था. मैं अपनी फाइल एक एक करके अधिकारियों से दस्खत करवाता गया और मैं हैरान था कि मेरी डी.एम.सी. निकलवाने के लिए मुझे कम से कम दस अफसरों के दस्तख़त करवाने पड़े.

लेकिन मेरे एक अध्यापक ने बताया कि विदेशों में इतना झंझट नहीं है. वहां आपको अपना सर्टिफिकेट जिस विभाग से लेना हो, बस उस विभाग में जाओ और वहां का हेड ऑफ़ डिपार्टमेंट आपको खुद ही डी.एम.सी बना के दे देगा. बस एक आदमी के हस्ताक्षर होंगे. मुझे बड़ी हैरानी हुई कि वो लोग अपना और दूसरों का कितना समय और पैसा बचाते हैं?

हमारे यहां तो एक अधिकारी के ऊपर दस और अधिकारी निगरानी करने के लिए रखे जाते हैं लेकिन फिर भी हमेशा गड़बड़ होती रहती है. दरअसल, जब हम एक आदमी को जिम्मेदार न बना कर, कईयों को जिम्मेदार बनाते हैं तो फिर किसी की भी जिम्मेदारी नहीं रहती. फिर हर कोई सोचता है कि यह मेरी जिम्मेदारी नहीं, यह तो मेरे से ऊपर वाला संभालेगा. यानि कि कोई जवाबदेह नहीं होता.

अब जवाबदेही तब बनती है जब हम **रुल** से बाहर जाकर कोई काम करेंगे. जब हम नियम में रहकर काम कर रहे हैं तो हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं. फिर जिम्मेदारी तो सिर्फ नियम निभाने की है. फिर हम कहेंगे कि देखो मैंने तो आपके नियमों के हिसाब से काम किया, परिणाम अच्छे नहीं आए तो मुझे कुछ नहीं मालूम ऐसा क्यों हुआ?

एक गांव में एक साधु आया. उसको एक क्विंटल दूध की जरूरत थी. उसने सारे गाव में ढिंढोरा पिटवा दिया कि चौराहे पर एक बहुत बड़ा बर्तन रखा है. सभी गांव वाले इसमें सुबह एक एक किलो दूध डालें.

अगर सभी एक एक किलो दूध डालें तो अपने आप एक क्विंटल दूध इकट्ठा हो जाएगा. अब हुआ यह कि हर आदमी यह सोचने लगा कि पूरा गांव तो दूध डालेगा और अगर मैं अकेला एक किलो पानी भी डाल दूंगा तो कौन सा किसी को पता चलेगा? कहते हैं, जब शाम को बर्तन को जांचा गया तो वह पूरा पानी से भरा था यानि कि एक भी आदमी ने दूध नहीं डाला. यानि कि सभी बर्तन में पानी डाल गए.

शायद सभी यही सोचते रहे कि पूरा गांव तो दूध डालेगा और अगर मैं नहीं भी डालता तो क्या फर्क पड़ने वाला है? फलस्वरूप, बर्तन में सभी पानी ही डाल गए. जब कई लोग एक चीज से जुड़ जाते हैं, तो फिर कोई ज़िम्मेदार नहीं होता. अब जब मैंने अपनी डी.एम.सी. लेनी थी तो लगभग बारह लोगों ने हस्ताक्षर किए होंगे.

इतने लोगों के हस्ताक्षर शायद इसलिए करवाए होंगे कि एक तो अगर एक आदमी को काम दिया गया तो वह रिश्वत ले सकता है और दूसरा अगर एक आदमी से गलती हो जाए तो दूसरा उसको पकड़ लेगा. लेकिन होता ठीक इसके उलट है. हर आदमी बिना जांचे यह समझकर हस्ताक्षर कर देता है कि दूसरे ने अच्छी तरह जांचा ही होगा.

मेरे कॉलेज में तरह तरह का सामान खरीदने के लिए अलग अलग कमेटियां बनी हुई हैं. अब सारे कमेटी के सदस्य बिना जांचे ही साइन कर देते हैं यही सोचकर कि कमेटी के कन्वीनर ने तो अच्छे से कागज जांचे ही होंगे. और कनवीनर इसलिए साइन कर देता है कि उसके कमेटी सदस्यों ने अच्छे से कागजों को जांचा ही होगा.

इसलिए कोई अच्छे से नहीं जांचता. धर्म और समाज भी एक सामूहिक मन है. सभी यही सोचते हैं कि ये जो हजारों साल पुरानी परम्पराएं हैं, गुरु हैं, महापुरुष

हैं इनको दूसरों ने तो अच्छे से जांचा ही होगा. इसलिए मुझे जांचने की जरूरत नहीं. फिर कोई जीवन को जीता नहीं, सभी दोहराते हैं.

जब एक डी.एम.सी. पर बारह अलग अलग लोग हस्ताक्षर कर रहे हैं और अगर कोई गलती हो गई तो किसको पकड़ोगे?

यानि कि फिर किसी की जिम्मेदारी नहीं. लेकिन विदेश में हेड ऑफ डिपार्टमेंट जब अकेला ही डी.एम.सी. बनाकर दे देता है तो जाहिर है वह खूब जांच-परख कर ही सर्टिफिकेट देगा क्योंकि अगर गलती हो गई तो जिम्मेदारी उसी की होगी.

यही कारण है कि आदमी अकेला खड़ा होने से डरता है. क्योंकि जब हम भीड़ का हिस्सा होते हैं तो जो भीड़ के साथ होगा वही हमारे साथ होगा. एक सुरक्षा का भाव है. यही कारण है कि हर आदमी किसी न किसी धर्म के साथ जुड़ा रहना चाहता है.

अब मान लो मैंने लव मैरिज की है और अगर यह असफल हो जाती है तो लोग यही कहते मिलेंगे कि हमने तो इसको बहुत समझाया था कि लव मैरिज मत करो. लेकिन इसने हमारी बात नहीं मानी तो अब भुगते. लेकिन अगर कोई पारंपरिक शादी असफल हो जाती है तो वहां इस तरह का दोष नहीं लगाया जाता.

मेरा एक दोस्त था जो मुझे फ़ेसबुक के जरिए जानता था. वह 'ब्रेक द रूल' से बहुत प्रभावित हुआ. वह हमेशा मुझे फोन करता और बताता कि वह जीवन में कैसे **रूल** तोड़ रहा था? वह 'ब्रेक द रूल' को लेकर बहुत उत्साहित था. लेकिन हुआ क्या? उसकी पत्नी बीमार रहने लगी. उसका मेरे दोस्त ने बहुत इलाज कराया लेकिन वह स्वस्थ नहीं हो सकी.

जब कई महीनों बाद भी उसकी पत्नी ठीक नहीं हो रही थी तो मेरे दोस्त को शक होने लगा कि कहीं 'ब्रेक द रूल' की वजह से तो उसकी पत्नी बीमार नहीं हुई? वह फिर मुझे फोन करना छोड़ गया. मैं समझ गया कि इसको वहम हो गया है.

अब मान लो उस दोस्त की जिंदगी में 'ब्रेक द रूल' आता ही नहीं, तो चाहे उसकी पत्नी कितनी बीमार होती, चाहे मर भी जाती तब भी इस सबकी जिम्मेदारी उसकी खुद की कभी न होती.

लोग उजड़ जाते हैं, बीमार हो जाते हैं, मर जाते है लेकिन उनको हमेशा लगता है कि यह तो भगवान कर रहा है. यानि कि खुद की जिम्मेदारी खत्म. यानि कि धर्म जीवन में तनाव खत्म कर देता है इसलिए यह बिना किसी सुखद नतीजों के भी आज तक प्रचलन में है.

जब एक अधिकारी अकेला डी.एम.सी. काटकर देता है तो वह काफी तनाव में रहता होगा. हर चीज जांच कर ही सर्टिफिकेट देता होगा. क्योंकि अगर गलती हो गई तो सीधे वही दोषी होगा. लेकिन जब दस अधिकारी बारी बारी से हस्ताक्षर कर रहे हैं और फिर डी.एम.सी. दी जाएगी तो कोई एक भी उनमें से तनाव में नहीं होगा क्योंकि उसने अकेले ने तो हस्ताक्षर किए नहीं.

अब न तो किसी एक को दोषी ठहराया जा सकता है और न ही सभी को! यहां से हम समझ सकते हैं कि धर्म का आज तक कोई सार्थक योगदान न होने के बावजूद क्यों हर आदमी धार्मिक होना चाहता है? क्यों लोग धार्मिक भीड़ का हिस्सा बनना चाहते हैं?

क्योंकि वहां एक सुरक्षा है, चाहे यह सुरक्षा झूठी है. अब वह मेरा दोस्त जब 'ब्रेक द रूल को' अपनाने लगा तो पत्नी के बीमार होने से तनाव में आ गया. क्यों? क्योंकि वह अकेला खड़ा होने की कोशिश कर रहा था. इसलिए जब पत्नी बीमार हुई तो उसको लगा उसकी पत्नी की बीमारी का दोषी वह खुद है क्योंकि वह भीड़ से अलग होकर **रूल** तोड़ने की एक अलग परंपरा पर चल पड़ा था.

लेकिन एक धार्मिक आदमी पर कितनी मुसीबतें आ जाएं, कोई मर जाए, कोई बीमार हो जाए लेकिन उसको बिल्कुल नहीं लगता कि ये सारी मुसीबतें उसके खुद की वजह से आ रही हैं? हर धार्मिक आदमी अपनी हर मुसीबत को बड़ी

आसानी से भगवान के हवाले कर देता है और उसका तनाव जाता रहता है. लेकिन अकेला खड़ा होने में दिक्कत है.

अब मैं बचपन से ही बीमार रहता था तो मेरे मन में एक ही सवाल बार बार आता था कि मैं ही क्यों बीमार हूं? बाकी सब लड़के तो ठीक हैं. यानि कि कम उम्र में रोगों का लगना सवाल खड़े करता है. क्योंकि मेरे दिल में कुछ सवाल उठे तो मैंने उन सवालों के जवाबों को आकर्षित किया और मुझे सही जवाब मिलते भी गए. परिणामस्वरूप आज मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं. मुझे आज एक भी बीमारी नहीं है.

मैंने एक बार इंश्योरेंस पॉलिसी ली तो मेरे दिल के स्वास्थ्य को जानने के लिए मेरे दिल का टी.एम.टी. टेस्ट किया गया. इस टेस्ट में मरीज को ट्रेडमिल पर दौड़ाया जाता है. अब रिपोर्ट देने वाला डॉक्टर हैरान था कि मेरा पचपन साल की उम्र में दिल इतना स्वस्थ कैसे है?

वह पूछने लगा कि आप ऐसा क्या करते हो कि इस उम्र में भी आपका दिल बिल्कुल स्वस्थ है? अब आप किसी भी मरीज, जो पचास साल या इससे ऊपर है, को पूछना कि आपको शुगर की बीमारी क्यों हो गई? देख लेना, ज्यादातर का जवाब यही होगा कि इस उम्र में सभी को होती ही है इसलिए मुझे भी हो गई.

यानि कि वह खुद अपनी बीमारी की जिम्मेवारी नहीं लेगा. क्योंकि अगर यह मान लिया कि मेरी बीमारी का मैं जिम्मेदार हूं तो तुरंत तनाव पैदा हो जाएगा. धर्म एक भीड़ है और भीड़ में कुछ भी हो जाए, उसकी जिम्मेवारी भीड़ की होगी. यही कारण है कि आपने देखा होगा कि जो पड़ोसी आज तक बड़े प्यार से रहते आ रहे थे, दंगे भड़कने पर यही पड़ोसी एक दूसरे को मार डालते हैं.

क्यों? क्योंकि भीड़ में उनकी जिम्मेदारी है ही नहीं? लोग बस यही कहेंगे कि भीड़ ने जलाकर मार डाला. धार्मिक आदमी का विवेक कभी नहीं पनपेगा क्योंकि वह अपने जीवन की जिम्मेदारी लेता ही नहीं; और जब तक हम अपने जीवन व अपने

एक्शन की जिम्मेदारी नहीं लेते, तब तक हमारा आत्मिक, शारीरिक और मानसिक विकास नहीं होगा.

अब मैं इतना बीमार रहा. आप मेरी यहां कुछ फोटो देखो. पहली फोटो में मैं अठाईस साल की उम्र में बिल्कुल बूढ़ा हो गया था. मैंने तीस साल सेहत के लिए अथाह संघर्ष में बिताए. मैंने सेहत पर लाखों रुपये खर्च किए. उस समय सेहत ठीक करने के लिए मैंने सेहत पर पानी की तरह पैसा बहाया.

जब मैं कभी चार हजार रुपये प्रति महीना कमा रहा था तो उसमें से मैं दो हजार प्रति माह सेहत पर खर्च कर रहा था. आज मैं डेढ़ लाख रुपये महीना कमा रहा हूं तो मैं दस हजार प्रति महीना सेहत पर खर्च कर रहा हूं.

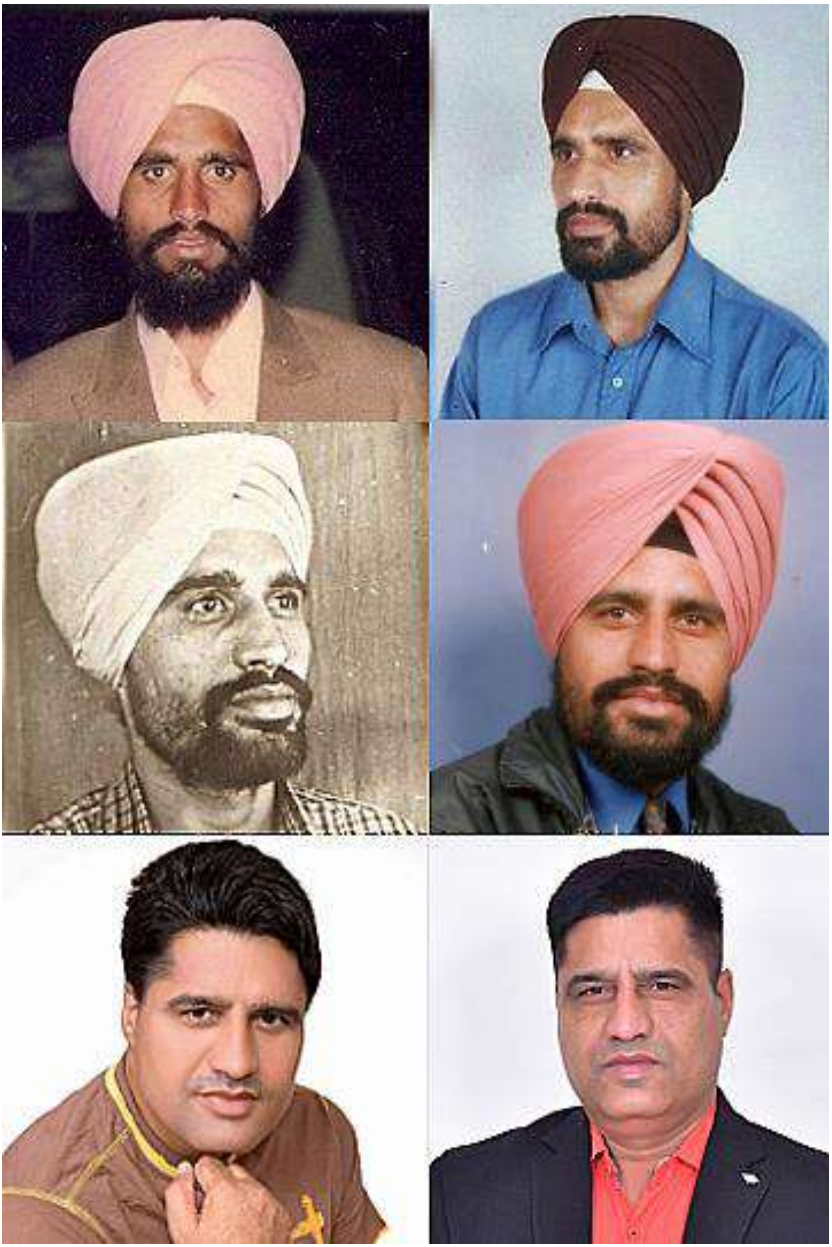

और इसमें कोई हैरानी की बात नहीं कि मैंने पिछले तीस साल से बढ़िया से बढ़िया नौकरी की लेकिन मेरा बैंक बैलेंस हमेशा जीरो रहा और आज भी मेरे पास पांच

पैसे की संपत्ति नहीं है. मेरे लिए मेरी सेहत ही मेरी पहली प्राथमिकता थी और मैंने उसे ठीक किया और अब मैं एक अच्छी सेहत का मालिक हूं.

दूसरी तरफ, मेरे साथियों ने एक एक पैसा जोड़ा ताकि उनका अच्छा बैंक बैलेंस हो, अच्छी कार हो, अच्छा घर हो. उन्होंने सेहत के बारे में कभी सोचा ही नहीं. सेहत उनकी प्राथमिकता नहीं थी. उनकी सारी ऊर्जा इस बात पर लगी हुई है कि कैसे पांच पांच पैसे बचाकर एक और प्लाट खरीदा जाए. आपको बड़ी हैरानी होगी कि आज भी मेरा बैंक बेलेन्स जीरो है पर मैं अपनी सेहत पर हर रोज तीन सौ रुपये खर्चता हूं.

यानि कि लोगों को लगता ही नहीं कि वे भी बीमार होंगे? इनको लगता है कि वह मेरा पड़ोसी बीमार हो गया, वह मेरा साथी बीमार हो गया, लेकिन शायद हम बीमार नहीं पड़ेंगे.

और जिस दिन ये लोग बीमार पड़ गए तो इनसे पूछना कि आप बीमार क्यों पड़े? तो देख लेना यही कहेंगे कि सभी बीमार पड़ रहे हैं इसलिए हम भी पड़ गए. धर्म में हर आदमी नरक की जिंदगी भोग रहा है. कहीं कोई रोजगार नहीं, थाने में कोई सुनता नहीं, बेतहाशा बेरोजगारी और महंगाई है लेकिन आदमी बड़े प्यार से ये सब सहन करता चला जाता है.

क्यों? क्योंकि उसको लगता है कि यह अकेले उसके साथ थोड़े हो रहा है, यह तो सबके साथ हो रहा है. भीड़ का हिस्सा होने का यही फायदा है कि जो भीड़ के साथ होगा वही हमारे साथ होगा. यही कारण है धर्म एक भीड़ बनाता है और फिर इस भीड़ को डराया जाता है. जब लोग डर जाते हैं तो धर्म उन्हें सभी समस्याओं के हल भी देता है.

देखिए, जीवन में समझ तब पैदा होगी जब आदमी अकेला चलेगा. बदलाव निजी स्तर पर आता है. भीड़ कभी नहीं बदलती और धर्म एक भीड़ है. इसलिए आप कभी किसी धार्मिक समाज में कोई परिवर्तन नहीं देखोगे. भीड़ में कभी कोई

बदलाव नहीं होता? आपने देखा भी होगा कि भारत में कितने गुरु, पैगंबर, फकीर और महापुरुष आए लेकिन भारतीय जनता की सोच आज तक नहीं बदली.

आज भी आदमी हजारों साल पहले के आदमी से कई गुना ज्यादा बीमार है, भ्रष्ट है और झूठा है. दंगे हैं, बेतहाशा बेरोजगारी है और सांप्रदायिकता है. यानि कि आदमी में कोई सकारात्मक बदलाव नहीं हुआ. आदमी बद से बदतर होता जा रहा है. सवाल यह है कि आदमी बदला क्यों नहीं?

होना तो यह चाहिए था कि जो यह हमने आज तक इतनी पूजा की, इतने कीर्तन किए, इतनी तीर्थ यात्राएं की, इतने व्रत रखे, इतने रोज़े रखे, इतने जागरण किए, तो जाहिर है आदमी को उतरोत्तर ईमानदार होते जाना चाहिए था. लेकिन हुआ उलटा! आदमी हैवान बन गया. आदमी पूर्ण रूप से बीमार हो गया. उसको ठूसने के लिए जेलें, अस्पताल कम पड़ रहे हैं.

इन्हीं सवालों को 'ब्रेक द रूल' खंगालने की कोशिश कर रहा है. हम इस बात पर गहन विचार कर रहे हैं कि जब हर आदमी कहता है कि मैं तो ठीक हूं, मैं तो ठीक कर रहा हूं, तो फिर उसके साथ हर जगह बुरा क्यों हो रहा है? और दूसरा सवाल यह है कि अगर आदमी में हजारों साल की सभ्यता के बाद आज तक कोई सकारात्मक बदलाव नहीं आया तो यह बदलाव आगे कैसे आएगा?

जब आदमी भीड़ या धर्म का हिस्सा होता है तो उस पर जितनी भी मुसीबतें आती हैं वह इनको भगवान की सौगात मानता है. वह इनको भगवान का प्रसाद मानकर सहन कर लेता है. लेकिन दिक्कत यह है कि जब तक आदमी अपने एक्शन की जिम्मेदारी नहीं लेता तब तक उसका मानसिक और आध्यात्मिक विकास बिल्कुल नहीं होता.

इस बात का सबूत यह है कि मुगलों और अंग्रेजों ने हमें हजार साल तक गुलाम रखा लेकिन यह कैसे संभव हुआ कि वो मुट्ठी भर थे और हम करोड़ों में? लेकिन फिर भी उन्होंने हमें गुलाम कैसे बना लिया? हम चालीस करोड़ अगर इक्ठे हो

जाते तो उनको खदेड़ सकते थे. हम इक्कठे क्यों नहीं हुए? इसका मुख्य कारण था कि यह जो हिंदुओं का इक्कठ था वह नकली था.

धार्मिक आदमी चाहे करोड़ों में हो, वह कभी एकमत नहीं होता क्योंकि उनके जीवन में कोई सूझबूझ या समझ तो होती ही नहीं. जो लोग अतीत से संचालित होते हैं वो कभी एकजुट होकर विरोध नहीं कर सकते. क्यों? क्योंकि सभी ने जड़ चीजों को पकड़ा हुआ है.

मान लो, मैं कहूं कि मुझे तो इस टेबल से प्रेम हो गया है क्योंकि इस टेबल ने मेरे लिए बहुत अच्छा काम किया इसलिए मैं हमेशा इसका एहसानमंद रहूंगा. मैं इस टेबल से कभी अलग नहीं हूंगा, मैं हमेशा इसे प्यार करूंगा. अब आप ही बताओ कि अगर हम एक ऐसी चीज से प्यार करते हैं जो हिल नहीं सकती और हम इसको छोड़ना भी नहीं चाहते तो जाहिर है हमें वहीं रहना होगा जहां टेबल है.

अब टेबल तो हिल नहीं सकती, जड़ है और हम भी जड़ हो गए क्योंकि हमने एक जड़ चीज से प्रेम कर लिया. हमें अब वहीं रहना होगा जहां टेबल है. सारा अतीत जड़ है क्योंकि अतीत में चीजें पूर्ण हो गईं, अब उनमें किसी बदलाव की कोई गुंजाइश नहीं.

किसी फकीर ने अतीत में अगर कोई करिश्मा कर दिया तो वह फिर एक आखिरी सत्य का रूप ले लेता है. उसमें अब हम कोई बदलाव नहीं कर सकते. आपने कल खाना खाया तो बस खाया. खाना अगर सुबह खाया तो क्या हम उसको शाम को खाया कह सकते हैं? नहीं ना? अतीत में जो चीज घटित हो गई वह फिर आखिरी सच है. उसमें हम फिर कोई बदलाव नहीं कर सकते.

अब जो जो हमारे गुरु ने, फकीर ने, देवता ने किया वह सब भी अब एक आखिरी सच है और वह सब भी टेबल की तरह जड़ है. अब अगर हम टेबल को पकड़ कर बैठ जाएं तो हम भी जड़ हो जाएंगे. यही कारण है कि विज्ञान ने तो बहुत

तरक्की कर ली लेकिन मानवता ने कोई तरक्की नहीं की. आदमी का व्यवहार बद से बदतर होता जा रहा है.

आदमी बदले तो तब जब वह बदलने के लिए आजाद हो. उसने तो ऐसी ही हजारों जड़ चीजों में आस्था जमा रखी है और ये सारी चीजें आदमी को स्थूलता प्रदान करती हैं. इस पक्ष को आप एक और तरीके से समझो.

मान लो, हम अपने दोनों जूतों के तस्मों को आपस में बांध देते हैं तो क्या होगा? हम एक भी कदम चल नहीं पाएंगे. क्यों? क्योंकि अब दोनों पैर चलने के लिए स्वतंत्र हैं ही नहीं. हम सिर्फ इसलिए चल पाते हैं क्योंकि हमारे दोनों पैर एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं. अगर स्वतंत्र नहीं तो एक भी कदम नहीं चल सकते. हां, अगर स्वतंत्र हों तो हम पूरी दुनिया का चक्कर लगा सकते हैं.

किसी ने ठीक ही कहा है कि व्यक्ति होने का मतलब है स्वतंत्र होना. जो स्वतंत्र नहीं वह वस्तु है.

धर्म कोई भी सामाजिक और मानसिक विकास क्यों नहीं होने देता? क्योंकि यह हमें अतीत, जो की जड़ है, से बांधता है. अब जो चीज अतीत में हो गई, जब उसमें कोई बदलाव नहीं हो सकता तो वह अतीत की चीज हमारे जीवन में क्या बदलाव करेगी?

अब सोचो, जो खाना आपने कल खाया क्या वह दोबारा खाया जा सकता है? नहीं, बिल्कुल नहीं! हम दोबारा कोई भी भोजन कर सकते हैं, अनंत संभावनाएं है पर जो कल खा लिया, उसको दोबारा नहीं खा सकते. अब जब कल का खाना दोबारा नहीं खाया जा सकता तो जो अतीत में घटनाएं घट गई, क्या वे दोबारा घट सकती हैं? बिल्कुल नहीं.

मेरे जीवन में मेरे किसी फकीर या गुरु की घटना तो क्या दोबारा घटनी थी, मेरे जीवन में तो मेरे खुद के अतीत की कोई घटना आज तक दोबारा नहीं घटी. कल

जो हमने भोजन खाया वह दोबारा नहीं खाया जा सकता. कैसे खाओगे? वह है ही नहीं. उसका तो वजूद ही नहीं है. जैसे हम कल के खाए खाने को दोबारा नहीं खा सकते, ऐसे ही हम अपने किसी भी महापुरुष के जीवन के अनुभव को अपने जीवन में दोबारा नहीं उतार सकते.

यहां मैं कोई आपको गुमराह नहीं कर रहा? नहीं! आप साक्षात प्रमाण देखो. हजारों सालों से हम अपने गुरुओं और महापुरुषों के रास्ते पर चल रहे हैं लेकिन आज भी दुनिया में हमारी गिनती सबसे ज्यादा भ्रष्ट लोगों में होती है. इससे सिद्ध होता है कि हम आज तक किसी भी महापुरुष के अनुभव को नहीं अपना सके.

अब जो चीज अतीत में हो गई वह दोबारा नहीं हो सकती. यह एक बात तो हमने समझ ली और हमने यह भी समझ लिया कि अतीत या इतिहास में कोई बदलाव नहीं हो सकता क्योंकि यह सब अब जड़ है. आगे चलकर हम यह भी सिद्ध करेंगे कि अतीत दोबारा घटित तो होता ही नहीं, इससे हमने आज तक कुछ सीखा भी नहीं.

भारत में कोई खोज क्यों नहीं होती?

एक दिन मेरा एक सिख दोस्त कहने लगा कि आप जनता को गुरुओं के रास्ते से भटका रहे हो. मैंने कहा नहीं मित्र ऐसा कुछ नहीं है. मैंने कहा कि गुरु गोबिंद सिंह जी मेरे हीरो हैं और मै उनके अधूरे सपनों को ही पूरा करने में लगा हूं.

वह भड़क गया और कहने लगा आप कैसे कह सकते है कि गुरु गोबिंद सिंह किसी काम को अधूरा छोड़ गए थे? उन्होंने तो सब काम पूरा करके निचोड़ गुरु ग्रन्थ साहिब में लिख दिया है. वह सब कुछ पूरा करके गए हैं. यह सुनकर मुझे बहुत झटका लगा.

मैंने कहा कि अगर सारा काम पूरा हो गया है तो आपकी ज्यादातर युवा पीढ़ी नशेड़ी क्यों हो गयी है, क्यों पंजाब में भ्रष्टाचार, अत्याचार, शोषण चरम सीमा पर है, क्यों किसान आत्महत्या कर रहे हैं? आप कैसे कह सकते हैं कि उनका काम पूरा हो चुका है?

यानि कि उसके अनुसार किसी गुरु का काम कभी अधूरा नहीं हो सकता. अगर वो ऐसा मान लेंगे तो गुरु भी फिर एक आम आदमी बन जाएगा. दूसरा, जिसने गुरु का काम पूरा करने का बीड़ा उठाया वह तो गुरु से भी बड़ा हो सकता है. यह भी उनकी नज़र में गुरु के सरासर अपमान जैसा होगा, तो यह भी उनको नाकाबिले बर्दाश्त ही होगा.

एक बात और! अब जो आदमी गुरु के काम को पूरा करेगा वह निश्चित ही गुरु से आगे भी निकल सकता है. सच में जब जीवन को जिया जाता है तो बहुत से नए नायक पैदा होते हैं और पुराने सभी कीर्तिमान टूट जाते हैं जो हम नहीं चाहते. यही कारण है कि किसी को गुरु का अधूरा काम पूरा करने की इजाजत नहीं है. अब जब सब कुछ है ही पूर्ण तो फिर करने धरने को बाकी कुछ बचता कहां है?

इसलिए हमारा समाज एक निठल्ला समाज है. यहां चोर, लुटेरे, जुआरी तो खूब पैदा होते हैं लेकिन अच्छे खिलाड़ी, अच्छे वैज्ञानिक नहीं! क्योंकि रुके हुए पानी में तो कीड़े-मकौड़े ही पैदा होंगे. यही कारण है यहां सदियों से कोई बदलाव नहीं. जो बदलाव आप देख रहे हैं वह विज्ञान की देन है और यह सारा विज्ञान हमें विकसित देशों ने दिया है.

यहां विज्ञान कैसे पैदा हो सकता है? यहां तो सब कुछ पूर्ण है, बस अब अगले जन्म की तैयारी है और वहां परमानंद मिलेगा. कहा भी गया है कि जब तक हम झूठे उपाय में उलझे रहते हैं तब तक सही उपाय नहीं खोजा जा सकता. धार्मिक आदमी, मरने के बाद उसका क्या होगा, उसे सुधारने के चक्कर में मर जाता है.

कैसे एक खोज करने के लिए एक वैज्ञानिक को सारी उम्र लग जाती है और हजारों प्रयोग करने पड़ते हैं. लेकिन अगर एक वैज्ञानिक यह मान ले कि गुरुओं ने सारा काम पूरा कर दिया तो फिर कोई खोज नहीं हो सकती. यही कारण है कि इंडिया में कोई खोज नहीं होती.

अब देखो, एक तोता पिंजरे में बंद होता है और अपनी खुद की बोली ही भूल जाता है और आदमी की वाणी बोलने लगता है. फिर उसका अपना वजूद ख़त्म हो जाता है. देखने में तोता बहुत बुद्धिमान लगता है लेकिन वास्तव में वह मूर्ख है. ऐसे लगता है जैसे वह हमारे सभी सवालों का जवाब बखूबी दे रहा है. पर सोचो जिस तोते की अपनी जिंदगी एक झूठ है तो वह आपको क्या सच बताएगा? आदमी भी उन बनावटी जवाबों को सुनकर बहुत खुश होता है.

वास्तव में आदमी ग्रंथो में इसी तरह के बनावटी जवाबों को बार-बार पढ़कर बड़ा खुश होता है. आदमी को तो बस बने बनाए जवाब चाहिए. आदमी इन जवाबों को जिंदगी में नहीं खोजना चाहता क्योंकि उससे तनाव पैदा होता है. इसलिए आदमी ग्रंथों को कभी तिलांजलि नहीं दे पाता क्योंकि सारे ग्रंथ हमें जीवन की हर समस्या का समाधान दे देते हैं. इसलिए बहुत सुकून मिलता है.

अब तोते के विरुद्ध कोयल बागों में कू कू करती है.

कभी महसूस करो उसकी जिंदगी में कितना बड़ा उल्लास है क्योंकि उसकी जिंदगी में आदमी के द्वारा बनाया गया कोई नियम नहीं. कितनी मस्ती है उसकी जिंदगी में? उसका जीवन हर क्षण एक उत्सव है. उसको खुश होने के लिए, आदमी की तरह, प्रयत्न नहीं करने पड़ते.

जबकि खुश होने के लिए आदमी दिन-रात प्रयत्न कर रहा है क्योंकि वह धर्म व् सामाजिक नियमों में इतना जकड़ा पड़ा है कि उसकी जिंदगी में ख़ुशी जैसे कोई चीज ही नहीं रही. आदमी को बार-बार त्यौहार मनाने पड़ते हैं, नशे की महफ़िल सजानी पड़ती है, रिश्वत लेनी पड़ती है क्योंकि वह खुश होना चाहता है. वह बार-बार धर्मस्थलों में जाएगा क्योंकि वह खुश होना चाहता है.

वह तोते की तरह हजारों सालों से कैद में है इसलिए वह अपना स्वाभाविक जीवन भूल चुका है. आदमी एक जबरदस्त बन्धन में है और इससे मुक्त होने के लिए वह साधु-संतों और फकीरों के चक्कर काटेगा. इसीलिए तो साधु-संतो और मौलवियों के पास जबरदस्त भीड़ है. इंसान अंदर से इतना कुंठित है, इतना व्याकुल है, इतना परेशान है कि उसको बस अपनी हर बीमारी का इलाज इन मौलवियों और साधुओं के पास नज़र आता है.

अब सोचो, यह गुलामी तो इन्हीं साधुओं और फकीरों ने दी तो फिर ये आपकी बीमारी का इलाज क्यों करेंगे? यह उसी प्रकार है जैसे जब कोई मछवारा पानी में जाल फेंकता है तो बहुत सारी मछलियां इसमें फंस जाती हैं. अब जब मछवारा जाल को बाहर खींचता है तो मछलिया फड़फड़ाने लगती हैं. मछलियां अब हताशा में उसी जाल के धागो को ही चूमने लगती हैं जो जाल इनको बाहर खींच रहा होता है और इनकी मौत का कारण बनता है.

मछलियां सोचती हैं कि शायद यह जाल उनको मरने से बचा लेगा लेकिन ऐसा सम्भव नहीं. हमें ये आज के ढोंगी फ़क़ीर और बाबा क्यों बचाएंगे क्योंकि हम खुद

इनका शिकार हैं. इनकी रोटी तभी तक चलेगी जब तक हम पिंजरे में तोते की तरह बंद रहेंगे. अगर हमें कोयल की तरह अपने खुद के जीवन में आनंद आने लगा तो इन ढोंगियों को फिर कौन पूछेगा?

देखिये, हमारी सलाह उन्ही लोगों और ग्रंथो के बारे में है जिनको हम आज तक पूजते आए हैं. हमने उन्ही नियमों को तोड़ना है जो हमें आज तक आराम देते आए हैं और खास बात यह है कि हमारे पास वक्त बहुत कम है. कोयल को खुश होने की जरूरत नहीं क्योंकि वह पहले से ही खुश है. अब आप बताओ कि क्या कोयल को किसी अध्यात्म की जरूरत है?

ग्रंथों, शास्त्रों, धर्म, भगवान की जरूरत सिर्फ तोते को है, कोयल को नहीं. अध्यात्म किस लिए चाहिए हमें? शायद खुश होने के लिए लेकिन कोयल तो इसके बगैर अपने आप में खुश रहती है.

किसी ने ठीक कहा कि आपको खुद को खोजना है, बाकी सब तो गूगल पर है. आप ही बताओ कि अगर मछली सागर को समझ ले तो क्या उसका जीवन बेहतर हो सकता है?

ऐसे ही अगर भगवान है तो इसको समझने से हमारा जीवन कोई बेहतर नहीं होता और अगर भगवान को समझने की जरूरत नहीं तो फिर धर्म का औचित्य भी नहीं रहता क्योंकी धर्म का वजूद भी भगवान पर ही टिका हुआ है.

अध्यात्म भी एक बीमार मन की उपज है. अध्यात्मवाद मुझे अप्रासंगिक नहीं बल्कि अनावश्यक लगता है! यदि आप सत्य, प्रेम और ईमानदारी से सहजता पूर्वक रहें तो किसी भी अध्यात्मवाद की जरूरत ही क्या है?

अब सोचो, अगर हम सब **रूल** तोड़कर कोयल की तरह आनंदित हो जाएं तो क्या हम भ्रष्टाचार करेंगे? क्या हम किसी का बलात्कार करेंगे? बिल्कुल नहीं, क्योंकि हम तो अपने जीवन में आनंदित हैं. ये सारी कुरीतियां बीमार मन की उपज है.

हमारा मुख्य ध्येय अच्छा या बुरा होना नहीं बल्कि सहज और सरल होना है और इसी में सारा आनंद छिपा है.

जितनी भी हमें समाज में बुराइयां नज़र आ रही हैं वह सब बीमारियां नहीं बल्कि बीमारी के लक्षण हैं. बीमारी तो सामाजिक व् धार्मिक नियम हैं और समाज में नियमों का सबसे बड़ा पिटारा धर्म है. और फिर तोता पिंजरे में जो भी कर रहा है वह बुरा या अच्छा नहीं है. नहीं इसमें अच्छे या बुरे वाली कोई बात नहीं.

यह समस्या तो मनोवैज्ञानिक है. अगर यह मनोवैज्ञानिक समस्या है तो फिर धर्म और भगवान का कोई औचित्य नहीं क्योंकि धर्म का सारा ढांचा अच्छे या बुरे होने पर टिका है. इसलिए किसी के कहने पर तोते की तरह मानसिक गुलाम मत बनो. झूठ व सच का ख़ुद पता करिए, ख़ुद के स्वतंत्र विचार रखिए.

वैज्ञानिक खोजें सिर्फ स्वतंत्र मन ही कर सकता है. न्याय भी एक स्वतंत्र मन प्रदान कर सकता है. धार्मिक देशों में न तो आपको न्याय मिलेगा और न ही वहां कोई खोज होती.

मैं बचपन में तीसरी कक्षा में था और मैं कक्षा का मॉनिटर भी था. एक और मेरा सहपाठी था जिसका नाम अमरीक सिंह था. वह बहुत सुंदर और सजीला था. वह पढ़ाई में तो अच्छा नहीं था लेकिन वह तख्ती बहुत अच्छी लिखता था.

हर रोज अध्यापक सारी कक्षा को तख्ती लिखने के लिए देता. जब सभी तख्ती लिख देते तो अध्यापक सभी को निर्देश देता कि अपनी-अपनी तख्तियां सुखाकर दीवार के सहारे रख दो. फिर वह अध्यापक एक एक करके सभी तख्तियों का निरीक्षण करता और अंत में एक तख्ती को प्रथम घोषित कर देता.

अब अमरीक सिंह की तख्ती रोज प्रथम आती थी. मुझे इससे बहुत ईर्ष्या होती कि कक्षा का मॉनिटर तो मैं हूं लेकिन तख्ती इसकी प्रथम आती है. मुझे उससे आगे निकलने का कोई रास्ता नज़र नहीं आ रहा था. एक तो मैं बहुत छोटा था

और मुझे बिल्कुल मालूम नहीं था कि अच्छी तख्ती लिखने के लिए किसकी मदद ली जाती?

पता नहीं मुझे क्या सूझा? मैं मॉनिटर होने के नाते जो सबसे अगली पंक्ति में बैठता था, अब मैंने अपना बैग उठाया और अमरीक सिंह के साथ सबसे पीछे बैठने लगा क्योंकि और कोई चारा भी नहीं था. जब मैं उसके पास बैठने लगा तो मुझे दो बातें समझ आयीं.

एक तो यह कि अमरीक सिंह तख्ती लिखने के लिए कोई साधारण स्याही प्रयोग नहीं करता. वह जो स्याही प्रयोग करता था उसका नाम था राज रोशनाई. यह स्याही थोड़ी महंगी थी पर इसमें गजब की चमक थी. जो स्याही बाकी की कक्षा प्रयोग करती थी वह थोड़ी मंद थी.

दूसरा जो मैंने महसूस किया वह यह था कि अमरीक सिंह जो कलम प्रयोग करता है उसका कट सीधा न होकर तिरछा है. मैंने भी यह दोनों चीजें करनी शुरू की और मेरे पास आकर्षण का सिद्धांत तो था ही. मैंने देखा कुछ ही दिनों बाद मेरी तख्ती प्रथम आ ही गई और मेरी यह एक बहुत बड़ी जीत थी.

अब इस मामले में मेरा गुरु कौन था? मेरा अध्यापक? बिल्कुल नहीं. मेरे अध्यापक ने तो अमरीक सिंह को भी कभी नहीं सिखाया था कि सुंदर लेख कैसे लिखते हैं? शायद अमरीक सिंह ने खुद ही सीखा था. तो फिर मेरा गुरु कौन था? निश्चय ही अमरीक सिंह और हालात ही मेरे गुरु थे. वरना बच्चे तो और भी कक्षा में बहुत थे और यह सीखने की प्रेरणा उनमें क्यों जागृत नहीं हुई?

सिर्फ मेरे अंदर ही सीखने की भावना जागृत हुई और उस मुकाम तक पहुंचने की रूपरेखा भी मैंने खुद ही तैयार की जबकि तब मैं बहुत छोटा था. बाकी के बच्चों को कोई ख्याल ही नहीं आया कि वो भी ऐसी अच्छी तख्ती लिख सकते हैं या फिर उनमें मेरी जैसी तीव्र इच्छा जागृत नहीं हुई.

अब हमारे सारे गुरु और देवता तो यही कहते हैं कि कोई इच्छा न करो क्योंकि इच्छा दुखों का घर है. शायद बाकी के सारे बच्चों ने इसीलिए तीव्र इच्छा नहीं की और इसलिए शायद आज कहीं गुमनाम और गरीबी की जिंदगी जी रहे होंगे. मैंने पहली बात तो तीव्र इच्छा की कि यह चीज तो मुझे चाहिए और दूसरा मैंने यह फैसला किया कि मैं यह हासिल करके रहूंगा. और तीसरा, मैंने थोड़ी योजना बनाई कि यह सब हासिल करने के लिए मुझे क्या करना होगा?

और चौथा, मैंने एक्शन साथ के साथ लेना शुरू कर दिया. जैसे अच्छी स्याही खरीदी, कलम का खत तिरछा काटना सीखा और सबसे महत्वपूर्ण था कि मैं उसके साथ बैठने लगा. मुझे मॉनिटर वाली जगह छोड़नी पड़ी. देखो, कितनी छोटी उम्र में मैं 'ब्रेक द रूल' का प्रयोग कर रहा था? बताओ मैं इतना बड़ा नहीं था तब यह सब सोचने के लिए. मैं सिर्फ उस वक्त तीसरी कक्षा में था. और जो अध्यापक हमें एक व्यवस्था के अधीन दिया गया था वह चाह कर भी मुझे प्रथम नहीं ला सकता था.

सच्चाई यह है कि जो बातें जिंदगी में सीखने योग्य होती हैं वह सिखाई नहीं जा सकती. वो खुद ही सीखनी पड़ती हैं या फिर हमें जीवन के हालात सिखाते हैं. सच पूछो तो मैंने कभी अपने अध्यापकों और धार्मिक गुरुओं से कुछ नहीं सीखा. मैंने सबसे कीमती चीजें सिर्फ अपने दोस्तों और हालातों से सीखी.

अब जो मैं बात आपसे कहना चाहता हूं वह यह कि अमरीक सिंह से मैंने बहुत कुछ सीखा. वही मेरा गुरु था. घटना बहुत छोटी थी और उम्र भी बहुत छोटी थी लेकिन सोचो इसने मेरे जीवन को कितना प्रभावित किया होगा? क्या इस तरह की सीख हम योजनाबद्ध तरीके से किसी को सिखा सकते हैं? क्या मैं अब बीस बच्चों को बिठाकर यह कीर्तन शुरू करूं कि देखो मैंने ऐसे बढ़िया तख्ती लिखनी सीखी थी?

आओ मैं तुम्हें भी सिखाता हूं. चलो तख्ती पोंछ लो और सूखा लो. चलो कलम का कट तिरछा काटो. स्याही भी चमक वाली प्रयोग करो. क्या आज मैं बच्चों को अपनी कामयाबी की कहानी बताऊं कि देखो ऐसे मेरी तख्ती प्रथम आई थी? इसलिए आप भी वैसा ही करो जैसा मैंने किया था. अब सोचो ऐसे कितने बच्चे मेरी जैसी सुंदर तख्ती लिख पाएंगे? शायद एक भी नहीं. तब जब मैंने अच्छी तख्ती लिखी थी तो तब भी तो बाकी के बच्चे इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी थे.

उन्होंने तो तब भी अमरीक सिंह और मेरी सुंदर और चमचमाती तख्ती देखी थी. जब तब वो सुंदर तख्ती लिखने के लिए प्रेरित नहीं हुए तो अब मैं कीर्तन में बच्चों को मेरी कामयाबी की कहानी सुनाकर कैसे सुंदर तख्ती लिखने के लिए प्रोत्साहित कर सकता हूं?

अब मान लो मैंने अच्छी तख्ती लिख डाली तो क्या अध्यापक इस घटना से कोई ऐसी युक्ति निकाल सकता था, ताकि उसी युक्ति के जरिए वह बाकी बच्चों को भी मेरी जैसी सुंदर तख्ती लिखवा सके? बिल्कुल नहीं! वह एक कोशिश कर सकता है और हो सकता है कुछ बच्चे अच्छी तख्ती लिख पाएं लेकिन जैसी मैंने लिखी थी शायद वैसी तख्ती वो न लिख पाएं.

और उस तख्ती से जो रूपांतरण मेरे अंदर हुआ था वह बाकी बच्चों में जुगाड़ करके नहीं लाया जा सकता. कहने का मतलब है कि मैंने जो सुंदर तख्ती लिखी, वह सिर्फ एक घटना थी जो सिर्फ एक बार घटित हो सकती है. हम अब उस घटना पर प्रवचन नहीं शुरू कर सकते और यह भी सच है कि मेरे अनुभव मेरे हैं यह अब किसी और के नहीं हो सकते.

मैं चाह कर भी मेरे अनुभव किसी और की जिंदगी में स्थानांतरित नहीं कर सकता. जब पुरानी घटनाएं दोबारा नहीं घटित हो सकती तो फिर क्यों हम दिन-रात मंदिरों, गुरुद्वारों में गुरुओं की कहानियां सुना सुना कर लोगों को कुंठित कर रहे हैं? क्या

हमारे गुरुओं, देवताओं, फकीरों की कामयाबी की कहानियां सुना कर हम लोगों को प्रेरित कर सकते हैं?

नहीं, बिल्कुल नहीं. अगर ऐसे किसी को प्रेरणा दी जा सकती होती तो मेरा अध्यापक आगे से अपनी हर कक्षा में मेरी कामयाबी की कहानी सुना सुना कर बहुत से बच्चों को सबसे सुंदर तख्ती लिखना सिखा रहा होता. लेकिन नहीं, ऐसा कभी नहीं होता. यानि कि एक बात तो यह है कि आपका अनुभव किसी और का नहीं हो सकता और दूसरा आप कीर्तन या प्रवचन करके कुछ हासिल नहीं कर सकते.

और इसका सबूत यह है कि हम दिन-रात भजन, कीर्तन में लीन है पर हमारी मानसिकता बद से बदतर होती जा रही है. तो फिर क्या करें? पहली चीज तो यह है कि क्या आपको मेरी बात समझ आ गई कि अतीत को दोहराने से कोई सीख पैदा नहीं होती क्योंकि अतीत के गुणगान करके आप सिर्फ ज्ञान बांट रहे हैं. पर जिंदगी ज्ञान से नहीं बदलती, जिंदगी एक्शन से बदलती है.

एक तो अगर आप मुझ से सहमत हैं तो आज से ये भजन-कीर्तन, जागरण, कर्मकांड, रोज़े, बुर्का, टोपी, पगड़ी को या तो त्याग दें या फिर इनके विकल्प प्रयोग करें. जब हम विकल्पों पर काम करेंगे तो ये पुरानी जड़ परंपराओं में हमारी आस्था कम होगी.

दूसरा, जीवन में कुछ इस तरह की परिस्थितियां पैदा करें जिससे हम अपने चारों और के माहौल से इंटरेक्शन या तालमेल कर सकें. अब अगर अध्यापक तख्ती तो लिखवाता लेकिन मुकाबला न करवाता तो भी शायद मैं सुंदर तख्ती लिखने के लिए प्रेरित न होता. हमें स्कूल में और भी इस तरह की गतिविधियों पर आधारित परिस्थितियां पैदा करनी चाहिए ताकि बच्चे को सीखने का माहौल मिले.

हम बड़ों को ज्यादा नहीं सिखा सकते क्योंकि वो पक चुके हैं. हमारी उम्मीद सिर्फ बच्चे हैं. देखिए, मैंने अमरीक सिंह को गुरुओं या देवताओं की तरह अपने मन में

नहीं बैठाया. मैंने उसको एक **रूल** का रूप नहीं लेने दिया. मैंने उसको हमेशा के लिए गुरु नहीं बनाया. शायद मुझे वह बस इतना ही सिखा सकता था.

शायद उसके पास मुझे सिखाने के लिए कुछ और नहीं था वरना मैं अमरीक सिंह से चिपक जाता और हमेशा उसको मिलता रहता. नहीं, बिल्कुल नहीं. मुझे कई साल बाद पता चला कि अमरीक सिंह एक ट्रक ड्राइवर बन गया है. हो सकता है उसकी जिंदगी में आज कोई रोमांच न हो, हो सकता है वह बहुत कर्जे में हो, हो सकता है वह बीमार हो लेकिन उसका चेला (मैं) बहुत आगे बढ़ गया था.

उसको पता भी नहीं कि मैं आज घर बैठकर इंटरनेट के जरिए हजारों लोगों से रोज बात करता हूं. उसको पता भी नहीं कि आज उसके चेले को लाखों लोग रोज पढ़ते हैं. उसको पता भी नहीं कि मैंने उसको छोड़ने के बाद बड़ी बड़ी डिग्रियां हासिल की. यानि कि आपकी जिंदगी आपके फैसलों की वजह से बदलने वाली है और दूसरी बात यह कि गुरु हर जगह विद्यमान है. ज्यों ही शिष्य तैयार होगा, गुरु उसी वक्त प्रकट हो जाएगा.

और तीसरी बात, प्रकृति में गुरु और चेले के बीच में कोई तालमेल स्थापित नहीं होता. कोई नियम अपनी जगह नहीं बना पाता. प्रकृति में आजादी है और कोई किसी से जुड़ता नहीं. अमरीक सिंह को आज तक भनक भी नहीं पड़ी होगी कि मेरी जिंदगी में उसका बहुत बड़ा योगदान रहा. जिंदगी में सारी सीख ऐसे ही मिलती है. जो सबसे बढ़िया सीख है उसके लिए आपको किसी स्कूल में जाने की जरूरत नहीं, किसी को गुरु बनाने की जरूरत नहीं. वह सीख प्रकृति में फ्री मिलती है.

जहां जहां हमें जरूरत होगी, वहीं वहीं गुरु अपने आप पैदा हो जायेगा, हमें सिखाएगा और हमारी जिंदगी से हमेशा के लिए गायब हो जाएगा. हमें गुलाम नहीं बनाएगा जैसे हम धार्मिक गुरुओं के गुलाम बन गए हैं. गुरु का इसलिए भी

गायब होना जरूरी है क्योंकि अगर वह हमारे जीवन में आकर ठहर गया तो फिर हमारे जीवन का फूल कभी नहीं खिलेगा.

जैसा कि आप समाज में देख पा रहे होंगे, हर आदमी के घर की दीवारें महापुरुषों की तस्वीरों से भरी पड़ी है लेकिन जिंदगी फिर भी झंड है. अगर गुरु हमारी जिंदगी से हट नहीं रहा तो उससे बड़ा हमारा कोई दुश्मन नहीं. फिर जो यह समाज में भ्रष्टाचार है, शोषण है, सांप्रदायिकता है इनका जिम्मेवार हमारे फकीर या हमारे देवता या गुरु हैं.

फिर हम गुरु के बनाए रिकॉर्ड कभी नहीं तोड़ पाएंगे जैसे मैंने अमरीक सिंह को पछाड़ दिया. फिर हम हमेशा दूसरे दर्जे की जिंदगी जीने के लिए मजबूर हो जाएंगे. अगर हमने अपने गुरु के बनाए रिकॉर्ड नहीं तोड़े तो फिर समाज कैसे आगे बढ़ेगा?

देखिए, अगर हम नहीं सीख रहे तो समझो हमारे गुरु हमारे साथ बने रहेंगे क्योंकि फिर हमें उनकी हमेशा जरूरत महसूस होती रहेगी. दूसरी तरफ, अगर हमने कुछ किसी से सीख लिया तो हम आगे बढ़ जाएंगे और हमारे गुरु अपने आप पीछे रह जाएंगे, धीरे-धीरे गायब हो जाएंगे जैसे मेरी जिंदगी से अमरीक सिंह गायब हो गया.

अगर सीख सबसे बढ़िया है तो यह सीख हमें गुरु से तोड़ देगी, लेकिन अगर फिर भी हम अपने धार्मिक गुरु से चिपके रहते हैं तो यह जीवन के विरुद्ध एक साजिश है. फिर समझो हम सीख नहीं रहे. मैं बिल्कुल भी बुद्धिमान नहीं हूं, लेकिन मैंने सिर्फ सीखने की लगन की वजह से ऐसे ऐसे असंभव काम कर डाले जिनके बारे में मैं कभी सोच भी नहीं सकता था.

मुझे लगता है मैंने जो जो काम कर डाले वो निहायत ही मुश्किल थे. मेरे हिसाब से देश का प्रधानमंत्री बनना आसान है लेकिन जो जो काम मैंने किए वो करने निहायत ही मुश्किल हैं. मैंने सेहत सुधार में ऐसी ऐसी कामयाबियां हासिल की हैं

कि मुझे खुद इतनी हैरानी होती है कि मैं एक साधारण सी बुद्धि से इतने बड़े कारनामे कैसे कर पाया?

एक बात और! जैसे मैंने अमरीक सिंह से तख्ती लिखनी सीखी, मैंने कुछ युक्तियां लगाई जैसे नई स्याही खरीदी, कलम का तिरछा कट लगाया और आगे वाली सीट छोड़कर अमरीक सिंह के साथ सबसे पीछे बैठने लगा. पहली तो मुझे हैरानी आज यह होती है कि तब किसी बच्चे ने मेरे से यह नहीं पूछा कि जोगा सिंह यह अच्छी तख्ती आपने कैसे लिखी? हमें भी बताओ, हम भी सीखना चाहते हैं. यहां तक अध्यापक ने भी नहीं पूछा.

दूसरी बात जो मैं बात कहना चाहता हूं वह यह है कि प्रकृति में जितनी भी जीवन उपयोगी सीख मिलती है वह अकस्मात मिलती है. जीवन एक बिना पगडंडी का रास्ता है, इसलिए कोई नक्शा काम नहीं करेगा. जब कोई रास्ता ही नहीं, नक्शा ही नहीं तो फिर कोई गुरु या फकीर भी किसी काम का नहीं. मैं जीवन उपयोगी सीख की बात कर रहा हूं. मैं इंजीनियर, डॉक्टर या ड्राइवर बनने वाले ज्ञान की बात नहीं कर रहा. वहां तो एक उस्ताद चाहिए.

और अगर यह सच है तो जितने भी हम पाठ-पूजा, कीर्तन, जागरण, रोजे कर रहे हैं ये सब व्यर्थ हैं. ये सारी गतिविधियां हमें कुंठित कर रही हैं.

एक बात और! मान लो मुझे तभी पता चल जाता कि अमरीक सिंह ने मुझे कुछ सिखाया और मैं अमरीक सिंह का चेला बन जाता और अमरीक सिंह के मन में भी थोड़ा उत्साह जाग जाता कि यार चलो एक चेला तो बन गया. चलो लंबे लंबे बाल रख लेता हूं, भगवा कपड़े डाल लेता हूं. इस तरह से धीरे धीरे उसके काफी चेले बनने लगते और फिर वह एक आश्रम बना लेता और मैं वहां का मुख्य कर्ता-धर्ता होता.

लेकिन होता क्या? हमारे अंदर संभावनाएं खत्म हो जाती. आज जो मैंने दुनिया को एक अद्भुत मिशन 'ब्रेक द रूल' दिया है यह न दे पाता. आज मेरी तुलना

लोग ओशो से करते हैं. यह तभी संभव हुआ जब मैं अमरीक सिंह से जुड़ा नहीं. यहां से हमें यह बात भली-भांति समझ आ जाती है कि धार्मिक देशों में कोई खोज क्यों नहीं होती? धार्मिक आदमी दुनिया को कोई सहूलियत क्यों नहीं दे पाता? धार्मिक देशों में अन्याय, सांप्रदायिकता और हिंसा क्यों होती है?

तो सोचो, अगर मैं अमरीक सिंह का शिष्य बन जाता तो मेरी और उसकी जिंदगी को ताला लग जाता. फिर हमारा जीवन बहुत सीमित सा होता. हम अपने आश्रम को चलाने के लिए न जाने कितने झूठ बोल रहे होते.

आज मैं एक उत्कृष्ट जीवन जी रहा हूं लेकिन अगर अमरीक सिंह गायब न होता तो मेरी जिंदगी आज नरक से कम न होती. अगर मैं उससे जुड़ जाता तो यह ऐसे होता जैसे दोनों जूतों को आप आपस में तस्मों से बांध दो. फिर चलकर देखना. फिर आप एक कदम भी नहीं चल पाओगे.

यह जो बहुत से समाज बदल नहीं रहे , यह जो भ्रष्टाचार, शोषण, सांप्रदायिकता अनंत है यह सिर्फ इसलिए है कि कुछ महापुरुष हमारी जिंदगी में आए और ठहर गए. फिर जीवन में समझ पैदा होनी बंद हो गई. यह ऐसे ही है जैसे जूते के दोनों तस्मों को आपस में बांध दो. फिर कोई प्रगति नहीं हो पाएगी. अब यह बात कितनी विडम्बनापूर्ण है कि जिनको हम अपनी जान से भी ज्यादा प्यार करते हैं वही हमारे विकास में सबसे बड़ी बाधा हैं.

किसी दूसरे का अनुभव आपका नहीं हो सकता

देखिए, मैं आज से 10 साल पहले अपनी कार से दिल्ली बहुत जाता था. अब दिक्कत यह थी कि मुझे दिल्ली के रास्तों का बिल्कुल पता नहीं था. इसलिए मैं अपने साथ एक ड्राइवर को ले जाता था. गाड़ी तो मैं खुद चलाता था लेकिन ड्राइवर साथ बैठ जाता था.

मुझे लगता कि कम से कम ड्राइवर को दिल्ली के बारे में मेरे से तो ज्यादा पता है. ड्राइवर मुझे रास्ता बताता रहता और मैं गाड़ी चलाता रहता. जब मैं लगभग दस बार ड्राइवर के साथ दिल्ली जा चुका था तो मैंने सोचा अब ड्राइवर को न ले जाया जाए क्योंकि इतनी बार दिल्ली ड्राइवर के साथ जाने के बाद तो मुझे सारे रास्ते मालूम पड़ गए होंगे. अब क्यों न खुद ही जाया जाए?

आपको बड़ी हैरानी होगी कि जब मैं ग्याहरवीं बार खुद गया तो मुझे तब भी किसी रास्ते का पता नहीं था. मैं बड़ा हैरान था कि आखिर मैंने ड्राइवर से कुछ नहीं सीखा. यानि कि ड्राइवर का अनुभव मेरा अनुभव नहीं बन सका. ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि जब वह मेरे साथ था तो बस मैं सिर्फ उस पर निर्भर था.

तब शायद मैंने अपने दिमाग पर बिल्कुल दबाव नहीं दिया कि मुझे इन रास्तों के बारे में ड्राइवर से सीख लेना चाहिए क्योंकि एक दिन मुझे अकेले ही आना है. यानि कि मैंने ड्राइवर से कुछ नहीं सीखा. जब मैं अपने ड्राइवर से, जो मेरे साथ बैठा था, कुछ नहीं सीख सका तो आप अपने गुरुओं, जो हजारों साल पहले हुए, से कैसे कुछ सीख सकते हो?

मैं कोई आपको बर्गला नहीं रहा. चारों तरफ देखो. क्या आपको महापुरुषों की समाज में कोई सीख नज़र आती है? क्या आपको लगता है कि जीवन का यह हिस्सा तो महापुरुषों की वजह से ठीक चल रहा है? जैसे हमारा पुरोहित, पंडित

हमें कीर्तन सुनाता रहता है ऐसे ही मेरा ड्राइवर मुझे सड़क पर दिशा-निर्देश दिए जा रहा था पर सीख कोई नहीं हुई.

सीख तब हुई जब मैंने खुद गाड़ी अकेले चलानी शुरू की. ड्राइवर क्या कर रहा था? वह मुझे ज्ञान दे रहा था और ज्ञान की जीवन में कोई उपयोगिता नहीं. वह मुझे ज्ञान दे रहा था और मैं चाहे गाड़ी खुद चला रहा था, तब भी मुझे रास्ता याद नहीं हो रहा था.

यानि कि एक्शन नहीं हो रही थी. यानि कि मेरी उस रास्ते के वातावरण से कोई इंटरेक्शन/तालमेल नहीं हो रहा था. इसलिए मुझे रास्ता याद नहीं हुआ. लेकिन जब मैं अकेला गया तो रास्ता याद हो गया क्योंकि अब मेरा उस वातावरण या हालातों से सीधा इंटरेक्शन/तालमेल हो गया. देखिए, रियलिटी वहां पैदा होगी जहां आपका ध्यान जाएगा.

जब ड्राइवर साथ था, तब हालातों से इंटरेक्शन/तालमेल क्यों नहीं हुआ? क्योंकि तब जिम्मेदारी ड्राइवर की थी. तब मेरी कोई जिम्मेदारी नहीं थी. इसलिए कोई इंटरेक्शन नहीं हुई और न ही कोई सीख हुई. जैसे ड्राइवर मुझे कुछ सिखा नहीं पाया, ऐसे ही कोई पादरी, कोई पुरोहित, कोई गुरु हमें कभी कोई सीख नहीं दे सकता.

समझ या सीख कोई ऐसी चीज नहीं कि इसको दूसरे से प्रसाद की तरह ग्रहण कर लिया जाए. अगर ऐसा होता तो ड्राइवर के मात्र मेरे साथ बैठने से मुझे रास्तों का ज्ञान हो जाना चाहिए था. वह ड्राइवर जो मुझे ज्ञान दे रहा था वह ठीक वैसा ज्ञान था जो हमें एक पादरी, पुरोहित या पंडित देता है.

हजारों सालों से हम निरंतर ज्ञान ले रहे हैं लेकिन कहीं कोई सकारात्मक परिणाम नहीं. इसका मतलब यह है कि हमें ज्ञान नहीं चाहिए. हमें एक्शन की जरूरत है. ठीक वैसा एक्शन जैसा तब हुआ जब मैं एक दिन खुद गाड़ी चलाकर दिल्ली गया. उससे पहले तो यूं मानों कि मैं बस प्रवचन सुन रहा था.

ऐसे प्रवचन हजारों सालों तक सुनते रहो, एक पैसे का फायदा नहीं होगा. और समाज को देखो कैसे बद से बदतर होता जा रहा है लेकिन कीर्तन, भजन, प्रवचन दिन-रात चल रहे हैं.

और एक और बहुत महत्वपूर्ण बात! वह यह है कि जितनी भी सीख होगी वह निजी स्तर पर होगी. यानि कि जब मैं ड्राइवर के साथ जाता था तो हम दो थे तो कोई सीख नहीं हुई, क्योंकि उसमें एक दूसरा आदमी, यानि कि ड्राइवर, एक रोड़ा बना हुआ था.

ज्यों ही मैंने उसे नकार दिया और अकेला निकल पड़ा, उसी दिन सीख हो गई. सीख के लिए सिर्फ और सिर्फ आप चाहिए और हालात चाहिए. कोई बिचौलिया अगर बीच में आ गया तो कोई सीख नहीं होगी. किसी ने सही कहा है कि नैतिकता/मानवता के आचरण हेतु मनुष्य स्वयं ही पर्याप्त है.

ड्राइवर क्या था? वह एक बिचौलिया था. वह मेरे और मेरे एक्शन के बीच में एक रोड़ा बना हुआ था.ज्यों ही रोड़ा हटा, एक्शन शुरू हो गया और ज्ञान की धारा बहने लगी. जिस दिन मैं अकेला गया उसी दिन मुझे सभी रास्तों का ज्ञान हो गया. अगर मैं ड्राइवर को लेकर एक हजार साल तक भी दिल्ली जाता रहता तो मुझे रास्तों का ज्ञान कभी नहीं होना था.

समाज ज्ञान से क्यों वंचित है? एक तो समाज में आदमी अकेला जीवन जीने के लिए आजाद नहीं है. उसको या तो सिख होना पड़ेगा या हिन्दू. अब हिन्दू या सिख क्या है? यह एक समूह हैं. अब ज्ञान सामूहिक स्तर पर पैदा होता ही नहीं, ज्ञान तो हमेशा निजी स्तर पर पैदा होता है. चरित्र अकेले आदमी का पनपता है. हम भीड़ के चरित्र को नहीं विकसित कर सकते.

लेकिन आदमी तो कहीं अकेला खड़ा ही नहीं. जहां देखो, वह किसी न किसी समुदाय से जुड़ा हुआ है. ऐसे में कभी ज्ञान नहीं पैदा होगा. और दूसरा, आदमी

का जीवन से सीधा संपर्क नहीं हो पा रहा जैसे बीज का धरती में मिट्टी से संपर्क होता है.

आदमी हमेशा अपने साथ बिचौलिये रखता है. वह पादरी, पंडित, फकीर और गुरु को बीच में ले आता है. वह गुरुओं, फकीरों, महापुरुषों के जरिए जीवन से संपर्क करना चाहता है. ठीक वैसे ही जैसे मैं एक ड्राइवर के जरिए दिल्ली को जानना चाह रहा था.

अब ये सारे गुरु, फकीर, संत हमारे लिए एक रोड़ा हैं. ये हमारा जीवन से सीधा संपर्क होने ही नहीं देते. जैसे बीज को पेड़ बनना है तो उसका सिर्फ मिट्टी से संपर्क होना बनता है. बीच में कोई बिचौलिया नहीं होना चाहिए. बीज को अंकुरित होने के लिए कोई विचार या विचारधारा सहायक नहीं हो सकती. नहीं, बीज को तो बस कुछ खनिज चाहिए, पानी चाहिए, हवा चाहिए और रोशनी चाहिए.

अब जब मैंने तख्ती लिखनी सीखी थी तो यह मुझे समझा कर नहीं लिखवाई जा सकती थी. नहीं, जितना आप मुझे समझाते उतना ही तख्ती लिखना मुश्किल होता चला जाता. बस मुझे कुछ कदम लेने थे जो मैंने लिए. वो कदम ही मेरे खनिज, लवण, मिट्टी, पानी और हवा थे.

अब पंडित, पुरोहित हमें हजारों साल पुरानी काल्पनिक कहानियां सुना सुना कर हमें सीख देना चाह रहे हैं जो आज तक तो संभव हुआ नहीं और होगा आगे भी नहीं. जब ड्राइवर मेरे साथ बैठा है, मैं उसको देख पा रहा हूं, उसे महसूस कर पा रहा हूं, वह अपने अनुभव बोल बोल कर मुझे देना चाह रहा है तब भी उसका अनुभव मेरा अनुभव नहीं बना.

तो बताओ, पंडित हमें हजारों साल पुरानी घटनाओं से कैसे कुछ सिखाएगा? जब हम किसी गुरु, फकीर, महापुरुष को देख ही नहीं पा रहे तो उनसे इंटरेक्शन/तालमेल का तो सवाल ही पैदा नहीं होता. तभी मैं कहता हूं कि हम अतीत से कभी कुछ नहीं सीखते.

ड्राइवर साथ बैठे होने से मैं फोकस ही नहीं कर पा रहा था, मुझे सड़कें दिख ही नहीं रही थी, मैं बस बेहोशी में ड्राइवर के सहारे गाड़ी चलाए जा रहा था. इसी तरह से आगर कोई गुरु, ग्रंथ या महापुरुष आपके जीवन में आकर ठहर गया तो आपका जीवन से संपर्क टूट जाएगा.

कैसे धर्म जानने में नहीं, करने में निहित है

मान लो मैं बाजार गया और मैंने दस जगह से अलग अलग खरीदारी की. हुआ यह कि सभी दुकानदारों ने मेरे साथ धोखा किया. किसी ने मुझे कम तोल कर दे दिया, तो किसी ने मुझे गले-सड़े आम डाल दिए और किसी ने मुझे फटा नोट थमा दिया.

घर आकर देखा तो मुझे बहुत दुख हुआ. मुझे हैरानी हुई कि सभी के सभी दुकानदार ही धोखेबाज हैं. यह कैसे हो सकता है कि सभी बेईमान हो? मेरा मन आज बहुत खराब हुआ. लेकिन जो सवाल उठता है वह यह है कि जब मेरे साथ धोखा हुआ तो मुझे बहुत चोट पहुंची लेकिन क्या मैं आज यह कसम खाऊंगा कि कम से कम आज से लेकर मैं किसी के साथ धोखा नहीं करूंगा?

मुझे आज लगा कि धोखा बहुत बुरी चीज है. इसलिए यह किसी को भी नहीं करना चाहिए. क्या मैं आज से ईमानदार होने का प्रण लूंगा? नहीं, बिल्कुल नहीं! मुझे थोड़ी देर के लिए सदमा जरूर लगेगा लेकिन मैं जब बजार जाऊंगा तो मैं भी ठीक वैसे ही लोगों के साथ व्यवहार करूंगा जैसा लोगों ने मेरे साथ किया था.

अगर मैं आज से सच्चा होने का प्रण लेता तो एक नया एक्शन शुरू हो जाता. जीवन एक नई अंगड़ाई लेता. मेरे नए अनुभव पैदा होते. मेरी सोच का रूपांतरण होता. लेकिन ऐसा कुछ नहीं होता. सच पूछो तो सारा धर्म ऐसे ही एक साजिश है. सभी दिन-रात कीर्तनों, भजनों में यह शोर मचा रहे हैं कि लोग भ्रष्ट और झूठे हैं लेकिन खुद कोई नई शुरुआत नहीं करता.

पुराना **रूल** टूटता नहीं. सभी लगभग वही कर रहे हैं जो उन्होंने कल किया था. जीवन में कोई नई शुरुआत नहीं होती. ज्यादातर लोग दोहराने की मुद्रा में हैं. आप समझ पा रहे होंगे कि दिन-रात कीर्तन चल रहे हैं, जागरण चल रहे हैं, रोज़े रखे जा रहे हैं, कोई टोपी डाल रहा है, तो कोई पगड़ी बांध रहा है लेकिन ये सब व्यर्थ की चीजें हैं. जो करना बनता है वह तो हम कर ही नहीं रहे.

यह ऐसे ही है जैसे आप गाड़ी के ब्रेक और क्लच का उपयोग ही ना करें और ऐक्सलरेटर पर पैर रखे रहें और गाड़ी का गियर भी न बदलें. तो ऐसी हालत में क्या होगा? आप कहीं नहीं पहुंच पाएंगे. गाड़ी एक ही गियर में चलते चलते नष्ट हो जाएगी.

और अगर सारे ही लोग दिन-रात एक ही गियर में गाड़ी चलाते घूमें तो ट्रेफिक का क्या हाल होगा? कोई गियर बदल ही नहीं रहा, सभी की एक जैसी स्पीड है. कोई कहीं पहुंच नहीं पा रहा क्योंकि हर कोई दूसरे के लिए एक रुकावट बन गया है. कोई ऐक्सलरेटर से पैर नहीं उठा रहा. हर कोई भयभीत है.

आप एक लाख दलित से पूछ लेना कि आरक्षण क्यों होना चाहिए? देख लेना सभी का रटा-रटाया एक ही जवाब होगा. जरा सा भी अंतर् नहीं मिलेगा. ऐसे ही किसी सिख से पूछ लेना कि बाल क्यों रखने चाहियें? एक ही जवाब मिलेगा. किसी की सोच में मौलिकता नहीं मिलेगी.

ऐसा लग रहा है कि कोई भी ऐक्सलरेटर से पैर नहीं उठाना चाहता. कोई जीवन में **ब्रेक** देकर नयी शुरुआत नहीं करना चाहता. कोई अपना अनुभव नहीं पैदा करना चाहता. किसी के जीवन में अपनी निजी फिलोस्फी नहीं पैदा हो रही. सारा समाज एक ही गियर में जीवन रूपी गाड़ी दौड़ाये जा रहा है. फलस्वरूप, हर कोई दूसरे से टकराये जा रहा है.

पिता अगर सिख था तो यह तय है कि बेटा भी सिख ही बनेगा और उसके सेक्स, औरत, धन, ईमानदारी, दुनिया आदि पर वही विचार होंगे जो उसके पिता के थे.

इस डिफाल्ट सेटिंग की वजह से आज तक कोई बड़ा सामाजिक बदलाव नहीं हुआ. आदमी पहले से ज्यादा बेईमान, बलात्कारी और बीमार है.

अगर हमें जीवन में शांति, सुख और समृद्धि चाहिए तो हमें खुद को कस्टमाइज़ करना होगा. कस्टमाइज़्ड सेटिंग का मतलब है अपने आपको समय और हालातों के अनुसार ढालना. बार बार पुनर्विचार करना है और जो चीज काम नहीं कर रही उसको **ब्रेक** देना है.

जब हम ऐक्सलरेटर दबाये चलेंगे, तो गाड़ी बड़ा गियर मांगने लगेगी. ऐसी अवस्था में उसी गियर में रेस दिए जाना बेवकूफी है. किसी भी यथास्थिति का टूटना बेहद जरूरी है वरना यह हमारे अवचेतन मन में एक परत की तरह जम जाती है और हमेशा हमें नियंत्रित करती रहती है.

धर्म कोई अपनाने की चीज नहीं अपितु करने की चीज है. ये पगड़ी बांधने, टोपी डालने, बुर्का पहनने की बजाय अगर मैं यह फैसला करता कि मेरे साथ जैसे धोखा हुआ, वैसा आगे से मैं किसी के साथ नहीं करूंगा तो वहीं धर्म उत्पन्न हो जाता.

धर्म जानने की प्रक्रिया नहीं, यह करने की प्रक्रिया है. जानना बिल्कुल जरूरी नहीं, करना जरूरी है. करके जानिए, जानकर कुछ मत करिए. अब आपने उल्टा करना है और यही 'ब्रेक द रूल' है. आज जब मेरे साथ दस जगह धोखा हुआ तो मैं जान गया कि धोखा एक बुरी चीज है. लेकिन यह जानने से मेरे जीवन में कोई बदलाव तो नहीं आया. करता तो मैं वही रहा जो मैं पहले से करता आ रहा था.

जीवन बदलेगा तब जब मैं किसी नई दिशा में जाता हूं. यानि कि मैं तब धार्मिक होता अगर आगे से मैं कम से कम रोज ईमानदार रहता. यानि कि धर्म पैदा हो गया. धर्म को पैदा होना है, धर्म कोई धारण करने की चीज नहीं.

धर्म का टोपी, पगड़ी, गुरु, महापुरुष, ग्रंथ से कोई लेना-देना नहीं. धर्म तो इस चीज में निहित है कि हम इस वक्त क्या करते हैं? कैसा महसूस करते हैं? आप

अपनी दिन भर की दिनचर्या को कैसे संचालित करते हो? धर्म का इस चीज से भी कोई लेना-देना नहीं कि हमारे पूर्वजों, गुरुओं और फकीरों ने कितने महान काम किए?

उनके महान कर्मों से हमारी सोच पर तो कोई असर नहीं पड़ता. उल्टा ये चीजें कुंठा पैदा करती हैं. लेना तो है एक्शन जो कोई नहीं लेता. बल्कि ये धर्म के नाम पर जो हजारों चीजें चल रही हैं ये सारी एक्शन लेने में रुकावट डालती हैं.

देखिए, सारा अतीत एक बिचौलिए का काम करता है. यह कहता है कि देख जो तू करना चाह रहा है वह पहले हो चुका है और प्रमाणिक भी है. तुम कोई नई शुरुआत क्यों करते हो? क्योंकि नया करने में असफलता के आसार ज्यादा हैं. इसलिए तू वही कर जो पहले हो चुका है क्योंकि उसको किसी ने पहले ही करके देख लिया है और वह ग्रंथों में लिखा पड़ा है.

यह सारा अतीत मेरे उस ड्राइवर की तरह मेरे साथ सीट पर बैठा रहता है और मुझे लगातार निर्देश देता रहता है. लेकिन इसमें दिक्कत यह है कि मैं कभी एक्ट नहीं कर पाता. यह अतीत कहीं हटे तब मैं एक्शन लूं. हमारी सारी गतिविधियां हमारे विश्वासों से जुड़ी हैं और जहां विश्वास होता है वहां एक्शन नदारद हो जाता है.

विश्वास आपको बस खुद पर करना है.

जैसे एक आदमी यह विश्वास करता है कि उसका ग्रंथ सबसे बढ़िया है तो देख लेना वह अपने ग्रंथ को कभी नहीं पढ़ेगा. अपने ग्रंथ को पढ़े तो तब अगर उसको थोड़ा सा भी शक हो जाए कि यह गलत भी हो सकता है. विश्वास का मतलब है मान लेना. बस किसी ने कह दिया और हमने मान लिया. फिर एक्शन लेने का सवाल ही नहीं उठता.

अब हिन्दू यह मानते हैं कि रावण को जलाने का मतलब है बुराई पर अच्छाई की जीत. अब हम हजारों सालों से रावण को जलाते आ रहे हैं लेकिन कोई समझदार आदमी आगे आकर यह नहीं पूछता कि आखिर रावण की सजा कब पूरी होगी? अब घर घर पैदा तो होने थे राम लेकिन घर घर पैदा हो गए रावण.

यानि नतीजे उलटे आ रहे हैं लेकिन हिन्दू अपने इस एक्शन पर कभी शक ही नहीं करते. हमारे सारे धार्मिक विश्वास इसी तरह के अंधविश्वास हैं. कोई आदमी अपनी सोच पर शक ही नहीं करता. सारे नतीजे उलटे आ रहे हैं पर फिर भी आदमी अपनी धारणाओं, अपनी सोच पर शक नहीं करता.

हमें सही सीख कौन दे सकता है?

अगर इमारतें सामने नज़र आयें तभी तो आप कह सकते हो कि किसी मजदूर ने कभी अपना पसीना बहाया होगा. और एक मजदूर ही आपको जीवन के प्रति कोई सही दिशा निर्देश दे सकता है क्योंकि एक मजदूर से ज्यादा जीवन को और कौन समझेगा?

लेकिन हम जीवन को जानने के लिए संतों के पीछे दौड़ रहे हैं. एक संत हमें जीवन के बारे में कुछ कैसे बता सकता है, वह तो खुद जीवन को जी ही नहीं रहा? जीवन का मर्म किसने अच्छे से जाना होगा? एक मजदूर ने या संत ने? क्या हमें समाज में किसी संत की कोई इमारत यानि कि उसकी कोई उपलब्धि सामने नज़र आ रही है? बिल्कुल नहीं!

लेकिन एक मजदूर की बनाई हुई इमारतें तो सारी नज़र आ रही हैं. जब समाज में ईमानदारी और सच्चाई है ही नहीं तो फिर किसी संत का समाज को क्या योगदान? जब इमारत है ही नहीं तो किसने इमारत बनाई, यह सवाल ही नहीं उठता. असली संत तो थॉमस एडिसन हैं जिसने बल्ब बनाकर पूरी दुनिया को रोशन कर दिया लेकिन हम ऐसे लोगों की हजारों सालों से पूजा किए जा रहे हैं जिनका समाज को योगदान नगण्य है.

स्वाभाविक है जिसने जीवन में संघर्ष किया होगा वही जीवन के मर्म को जान पाया होगा. तो जीवन के बारे में हमें एक अच्छी सीख एक मजदूर दे सकता है या एक संत? लेकिन हम मजदूर को हमेशा से एक हेय दृष्टि से देखते आये हैं. संत जो कुछ भी नहीं करता और आपको भी सब कुछ छोड़ने के लिए कहता है उसको हम पूजनीय मानते हैं.

देश प्रेमी कौन है?

सौंदर्य प्रसाधन सिर्फ कुरूप चेहरों की जरूरत है. दवा सिर्फ बीमार शरीर की जरूरत है. कोर्ट, थाने और जेलें सिर्फ अधार्मिक समाजों की जरूरत हैं. देश प्रेम का पाखंड सिर्फ देशद्रोही करेगा.

क्या एक मजदूर को देश प्रेमी होने के लिए कुछ अलग से करना पड़ेगा? कभी नहीं! जैसे हमें देशप्रेमी होने के लिए कुछ अलग से नहीं करना, ऐसे ही हमें शांति के लिए, मुक्ति के लिए, परमानन्द के लिए और संतुष्ट होने के लिए कुछ अलग से नहीं करना.

बताओ, एक मजदूर दिन भर कड़ी मेहनत करता है तो उसको देश प्रेमी होने के लिए क्या अलग से करना है? देश प्रेमी उसको होने की जरूरत है जो देशद्रोही हैं. देश प्रेम का ढोंग उसको करने की जरूरत है जो हर रोज बेईमानी करता है, चोरी करता है, ठगी करता है.

उसकी आत्मा उसको हर वक्त कचोटती है, उसके अंदर एक अपराध बोध है. यह ध्यान लगाना, आत्मा-परमात्मा, अध्यात्म, परमानन्द भी एक बीमार मन की चाह है. ये सब जीवन का अभिन्न अंग नहीं हैं.

एक विदेशी खुद को ईमानदार क्यों नहीं मानता?

अगर आप एक विकसित देश के नागरिक को ईमानदार होते देखो तो आप उसको बोल देना कि भाई तू इतना ईमानदार कैसे है? देख लेना उसको समझ ही नहीं आएगा कि आप उसको क्या पूछ रहे हो?

उसको बिल्कुल नहीं मालूम कि वह ईमानदार है? वह कहेगा कि इसमें ईमानदारी की क्या बात है? मैंने ग्राहक से पैसे लिए और उसको सही सामान तोलकर दे दिया, इसमें ईमानदारी की क्या बात है? देख लेना वह यह नहीं कहेगा कि मैं एक क्रिश्चियन हूं और बाइबल ने हमें यह सब सिखाया है. नहीं, उसको तो मालूम ही नहीं कि वह कोई अच्छा काम कर रहा है?

यह तो उसका रोजाना जीने का तरीका है. वह झूठ-मूठ का ईमानदार बनने की कोशिश नहीं कर रहा. ईमानदार तो वह स्वाभाविक रूप से है जैसे एक जानवर ईमानदार होता है. दूसरी तरफ हर भारतीय ईमानदार होने में लगा है. वह ईमानदार नहीं है, पर फिर भी हर वक्त ईमानदार होने में लगा है और हजारों साल बाद भी तनिक ईमानदार नहीं हो सका.

यहां सभी महापुरुषों ने हर तरह की कोशिश कर ली लेकिन भारतीय समाज कभी ईमानदार नहीं बन पाया. क्यों? इसलिए इस सारे मामले पर ही सवाल खड़े होते हैं. हमें अब वो सब **रूल** भुलाने होंगे जो हमें पीछे की तरफ खींचते हैं. जिंदगी के **रूल** को वही व्यक्ति भुलाएगा जिसे यह अहसास हो गया होगा कि जीवन तो बहुत छोटा है.

हर भारतीय अपने को ईमानदार मानता है लेकिन झट से रिश्वत दे भी देता है और ले भी लेता है. लेकिन खुद को कभी भ्रष्ट भी नहीं मानता. एक विदेशी अपने आपको बिल्कुल ईमानदार नहीं मानता लेकिन होता बहुत ईमानदार है.

आप कभी विदेश जाएं तो वहां का व्यक्ति आपको बहुत ही अनुशासन प्रिय और ईमानदार नज़र आता है. तब हमें हैरानी होती है कि कोई इतना ईमानदार कैसे हो सकता है? जबकि खास बात यह है कि जो ईमानदार है उसको मालूम ही नहीं कि वह ईमानदार है? हमें उसमें ईमानदारी इसलिए दिख रही है क्योंकि हमारे अंदर बेईमानी का सॉफ्टवेयर पहले से पड़ा है.

हर भारतीय को दूसरे धर्म का आदमी पाखंडी और अंधविश्वासी नज़र आता है.. जितना आदमी आपको धार्मिक नज़र आये तो समझ लेना वह उतना ही अधार्मिक और पाखंडी है. हम अगर एक विकसित देश में जाएं तो हमें हैरानी होगी कि ये लोग किसी चर्च में नहीं जाते, कोई रोजे नहीं रखते, किसी धार्मिक ग्रंथ में आस्था नहीं रखते, कोई तीर्थ यात्रा नहीं करते फिर भी ये इतने ईमानदार क्यों है?

वो लोग चौबीस घंटों में से अठारह घंटे काम करते हैं. उनके पास कहां वक्त है इन भजन कीर्तनों में जाया करने का? जो लोग एक एक हफ्ता बीत जाने पर भी अपनी पत्नी का चेहरा नहीं देख पाते, वो धर्म के बारे में कब और क्यों सोचेंगे? इधर हमारा तो सारा इतिहास ही ऋषि मुनियों, गुरुओं, फकीरों और ग्रंथों से भरा है. गली गली, चप्पे चप्पे पर कीर्तन और जागरण हो रहे हैं लेकिन फिर भी हम दुनिया में सबसे ज्यादा भ्रष्ट माने जाते हैं? क्यों?

कभी सोचा है कि यह लोचा क्या है?

हम यहां भारत में, अगर किसी सार्वजनिक स्थल पर दो रुपये का सामान रखकर भूल जाते हैं, तो दोबारा आकर उसे पुनः प्राप्त करने के बारे में सोच भी नहीं सकते. क्यों? क्योंकि मूलतः हमारे विश्वास, हमारी धारणाएं, हमारे गुरु, हमारे ग्रंथ, हमारे देवता ही हमारे सबसे बड़े दुश्मन हैं.

यद्यपि मैं मानता हूं कि यह बात हजम होने वाली नहीं, लेकिन कड़वी सच्चाई यही है. पेंच यहीं कहीं पर फंसा है और इस तरफ दिमाग को घुमाना ही 'ब्रेक द

रूल' है. हमें बड़ी जल्दी अपने इस रोग की जड़ तक पहुंचना होगा, वरना हम कहीं के न रहेंगे.

किसी गुरु महापुरुष में कोई बुराई नहीं, बुराई है उनको यांत्रिक तरीके से दोहराना.

सच तो यह है कि हमने हजारों साल गवां दिए भगवान को पाने के चक्कर में और इस चक्कर में जिंदगी को जीना ही भूल बैठे.

जो मानसिकता हमें कंट्रोल कर रही है, जो **रूल** हमारे मन में फिट कर दिए हैं उनको तोड़ना होगा क्योंकि हमारे पास वक्त बहुत कम है क्योंकि जीवन भी सिर्फ एक बार ही मिलता है. सारा दिन धर्म के पीछे समय क्यों खराब करना? सारा दिन यह तेरा-मेरा भेदभाव आदि क्यों करना? हमें एक अच्छा सुखी जीवन जीने के लिए समय निकालना होगा.

विकास का आधार क्या है?

एक काल्पनिक कहानी के जरिए इसे समझते हैं. एक बार एक दार्शनिक और उसका चेला किसी गांव में एक किसान के घर गए. किसान के पास एक भैंस थी और वह उसका दूध बेचकर गुजारा करता था. किसान के पास बहुत सी जमीन भी थी पर वह सारी खाली पड़ी रहती थी.

किसान उसमें कुछ नहीं बोता था. वह दार्शनिक रात को किसान के घर पर ही ठहरा और किसान ने उसकी बहुत अच्छी मेहमाननवाज़ी की. उस दार्शनिक और उसके चेले ने रात को उठकर किसान की भैंस को खोला और पहाड़ के ऊपर ले जाकर उसे पहाड़ से नीचे धकेल दिया और भैंस मर गयी.

चेले को यह बात बिल्कुल हजम नहीं हुई कि किसान की आय का एकमात्र साधन दार्शनिक ने एक ही झटके में खत्म कर दिया. वह दार्शनिक और चेला रात को ही वहां से खिसक गए. कई साल बाद फिर वही दार्शनिक और चेला फिर उसी गांव

में किसान के पास आये तो देखा कि किसान के खेतों में हरी-भरी फसलें लहरा रही थी और वह बहुत सम्पन्न हो गया था.

किसान ने कहा कि गुरुदेव आप तो उस दिन बिना बताए ही चले गए. मेरे ऊपर तो मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा था. मेरी भैंस पहाड़ से गिरकर मर गयी और मैं बर्बाद हो गया. भैंस ही एक मात्र आय का साधन थी, वह भी मर गयी. तो दार्शनिक ने पूछा कि फिर आपने क्या किया?

किसान बोला, "मैं क्या करता? बस फिर हम जंगल में गए और थोड़ी लकड़ी काटी. उसको बेचकर हमने गुजारा करना शुरू किया. कुछ बचे पैसों से हमने खेत में बीज बो दिया. पहले साल बहुत थोड़ी फसल हुई तो हमने अगली बार और बीज बो दिया जिससे फसल और अच्छी हुई. धीरे धीरे मैं सम्पन्न होता चला गया."

चेले को अब समझ आया कि दार्शनिक ने किसान की भैंस को क्यों मारा था? देखिये, जब तक वो लोग भैंस पर आश्रित थे, वो किसी और सम्भावना की तरफ देख ही नहीं रहे थे चाहे वो सम्भावना बहुत प्रबल और बिल्कुल पास ही थी. मान लो, मैं एक कमरे में एक कुर्सी ढून्ढ रहा हूं पर अगर मुझे यह न पता रहे कि मैं क्या ढून्ढ रहा हूं तो कुर्सी मुझे कमरे में नज़र भी नहीं आएगी चाहे वह मेरे सामने पड़ी हो.

किसान को अपने खेत दिखाई भी नहीं देते थे चाहे उन खेतों में अच्छी फसल की प्रबल संभावना थी. वह तो सिर्फ भैंस पर आश्रित था और उसको भैंस की लत लग गई थी ठीक जैसे हमें धर्म और महापुरुषों की लत लग गई है. उसको लगता था कि भैंस बहुत उपयोगी है पर वास्तव में इसी भैंस ने उसके विकास के सारे रास्ते बंद किए हुए थे. खराबी भैंस में नहीं थी, खराबी नज़रिये में थी.

इसी तरह से खराबी गुरुओं व् ग्रंथों में नहीं बल्कि खराबी उस नज़रिये में है जिस ढंग से हमने भगवान व् धर्म को पकड़ा हुआ है. लेकिन जिस चीज को हम पकड़ लेते हैं वह स्वतः ही दूषित हो जाती है. जैसे हम कमीज को डालते हैं तो यह

दूषित हो जाती है क्योंकि हमारे शरीर के कीटाणु इस कमीज में चले जाते हैं. ऐसे ही जिन गुरुओं को हम पकड़ लेते हैं वो चाहे लाख अच्छे हों लेकिन हमारे साथ जुड़ने से वो सब सांप्रदायिक रंग ले जाते हैं.

अब आप यह भी कह सकते हो कि आप खुद ही कह रहे हो कि खराबी धर्म या गुरुओं में नहीं अपितु नजरिए में है तो इसका मतलब नजरिए को ठीक करो, धर्म या गुरुओं को छोड़ने की क्या जरूरत है? देखिए, अगर आप अपनी कमीज किसी को देना चाहो तो वह नहीं लेगा क्योंकि आपके शरीर के कीटाणु उस कमीज में चले गए हैं.

कोई आदमी किसी दूसरे की कमीज नहीं डालना चाहेगा क्योंकि कमीज दूषित हो गई है. अब आप किसी को कहना कि मैंने यह कमीज सौ बार धो दी है अब ले लो. देख लेना वह फिर भी नहीं लेगा. अब दूसरी तरफ आप किसी को पुरानी कमीज देने की बजाय एक नई खरीद कर दे दो तो वह झट से ले लेगा.

जैसे हम कमीज को धोकर किटाणु रहित नहीं कर सकते ऐसे ही हम धर्म, मृत गुरुओं और महापुरुषों को कभी सुधार नहीं सकते. हम सिर्फ इसको नकार सकते हैं.

ऐसे ही ये सारे धर्म, गुरु, ग्रंथ और फकीर क्या हैं? ये सब पुरानी कमीजें हैं क्योंकि इनको किसी न किसी ने हमेशा से पहन रखा है और हमारी गंदी मानसिकता इन गुरुओं और फकीरों में चली गई है. अब ये हमेशा दुर्गंध ही देंगे और इनको धोकर भी हम ठीक नहीं कर सकते. ये सारे शब्द अब गलत अर्थ ही देते रहेंगे.

इनको अब साफ करके किसी को नहीं पकड़ाया जा सकता क्योंकि लोग इनसे अब नए अर्थ नहीं निकाल पाएंगे. अच्छा हो कोई नई कमीज यानि कि कोई नया शब्द दो ताकि मेहनत बहुत कम करनी पड़े जैसे हमने 'ब्रेक द रूल' नया शब्द दिया है.

यही कारण है हम गुरुओं को छोड़ने के लिए कहते हैं. अब मान लो, अगर वह दार्शनिक उस किसान को लाख समझाता कि तू भाई इस धरती में बीज बो तो तू खुशहाल हो जाएगा, तो वह किसान शायद ही दार्शनिक की बात मानता. आपने देखा कि **रूल** का टूटना कितना जरूरी है?

अगर हम किसान को कहते कि देखो इस भैंस को बेच दो क्योंकि यह आपके विकास में सबसे बड़ा रोड़ा है तो किसान कभी नहीं मानने वाला था. समझाने से कभी किसी को समझ नहीं आती और यही मानवता की सबसे बड़ी विडंबना है. अगर समझ आती होती तो समाज रातों-रात स्वर्ग बन जाता क्योंकि गली गली, चप्पे चप्पे पर भजन, कीर्तन और जागरण चल रहे हैं और इन सभी में लोगों को सिर्फ और सिर्फ समझाया ही जाता है लेकिन किसी को समझ आती प्रतीत नहीं हो रही.

याद रहे, कोई भी प्रेरक किसी को प्रेरित नहीं कर सकता. कोई भी इंसान किसी के जीवन को बदल नहीं सकता. आपको सिखाना नहीं, बल्कि उसको सोचने पर मजबूर करना है. उस दार्शनिक ने किसान को समझाया नहीं, बल्कि सोचने पर मजबूर किया. उसने किसान को प्रवचन नहीं दिया बल्कि ऐसे हालात पैदा किए कि किसान के पास मेहनत करने के इलावा कोई चारा ही नहीं रहा.

और एक और बहुत महत्वपूर्ण बात! आदमी को नई सोच सिर्फ तब दी जा सकती है जब वह तनाव में होता है. जब किसान का सब कुछ चला गया, तब उसने खुद जीने का रास्ता निकाला. धर्म में दिक्कत यह है कि यह सारे हल खुद आदमी को दे देता है इसलिए आदमी जीवन में कोई जोखिम नहीं लेता.

मैंने अच्छी तख्ती लिख डाली तो ऐसा नहीं कि मेरा उदाहरण देकर अध्यापक बाकी की सारी कक्षा को भी अच्छी तख्ती लिखवा देता. नहीं, बिल्कुल नहीं! वह सिर्फ मेरा सच था और मेरा रहेगा. हर आदमी को अपना सच खुद तलाशना पड़ेगा वरना पाखंड और अंधविश्वास तो समाज बिना मांगे हमारे दिमाग में डाल देता है.

अगर हमने अपने घर की दीवारों पर अपने धर्म के साथ दूसरे धर्मों के गुरुओं की तस्वीरें भी लगाई होती तो हम शायद आपको गुरुओं को छोड़ने के लिए न कहते. अब भैंस को मारना उस व्यवस्था को तोड़ना था जो बहुत लम्बे समय से चली आ रही थी और किसान की बर्बादी का कारण बनी हुई थी. अब भैंस बुरी नहीं थी, पर यह सोचना कि सिर्फ वह भैंस ही अच्छी है यह किसान के जीवन में बाधा बनी हुई थी.

जब मैं कहता हूं कि गुरुओं, फकीरों को छोड़ दो तो शातिर लोग इसका यह गलत मतलब पेश करते हैं कि देखो प्रो. जोगा सिंह हमारे गुरुओं के विरुद्ध बोल रहा है. नहीं, बिल्कुल नहीं. मैं तो यह कह रहा हूं कि जिस भैंस को आपने पकड़ा हुआ है उसकी वजह से आपका विकास नहीं हो पा रहा. अब वह दार्शनिक उस किसान को समझा भी तो सकता था कि भाई तू खेतों की बुवाई कर, हल चला, बहुत कमाई होगी.

लेकिन उसने नहीं किया. शायद उसको पता होगा कि किसान नहीं मानने वाला. वह किसान अपनी उसी जिंदगी में आराम महसूस कर रहा था और बदलने की चेष्टा नहीं कर रहा था. उसके लिए वह भैंस ही एक अंतिम सच बन चुकी थी. ठीक ऐसे ही हमने कुछ गुरुओं, फकीरों, ग्रंथों, धारणाओं को आखिरी सच मान लिया है. इसलिए अब कोई और नया सत्य हमारे जीवन में जन्म नहीं ले सकता.

वह भैंस लाख अच्छी थी पर दिक्कत यह थी कि वह किसान को जीवन से जुदा कर रही थी. वह किसान के अच्छे जीवन में रोड़ा बनी हुई थी. किसान खेतो की तरफ देखना भी नहीं चाहता था क्योंकि वहां बहुत मेहनत करनी पड़ सकती थी और कुछ पक्का भी नहीं था कि अगर वह मेहनत करे तो फायदा होगा या नहीं.

वो लोग किसान को प्रवचन देकर यह नहीं समझा सकते थे कि तुम खेती शुरू करो. ऐसे ही कोई गुरुओं, फकीरों और ग्रंथों के रहते आपको प्रवचन देकर नहीं

समझा सकता कि ऐसे ईमानदार और सच्चे बन जाओ. नहीं, ये पुराने **रूल** सिर्फ तब टूटते हैं जब हम निसहाय हो जाते हैं.

जब पुराना छिन जाता है तो हमारे पास नया पैदा करने के बजाय और कोई चारा नहीं रहता. जब जीवन में बहुत बुरा हो जाता है तो फिर अच्छा होने की संभावना बहुत प्रबल हो जाती है. जब सब कुछ ख़त्म हो जाता है तो फिर एक नयी शुरुआत की संभावना बढ़ जाती है.

जीवन अनंत अवसरों से भरपूर है. पृथ्वी पर जीवन लाखों, अरबों से ज्यादा संभावनाओं का परिणाम है, लेकिन हमें ये सभी संभावनाएं दिखाई नहीं देती क्योंकि हम सिर्फ एक विकल्प से जुड़ जाते हैं. हमें जहां थोड़ा सा आराम मिलता है हम वहीं घर बना लेते हैं. हमें इन घरों से बहुत प्यार हो जाता है. चाहे ये घर नकली हैं लेकिन हम इनको असली और आखिरी मान लेते हैं.

कैसे बच्चे बहुत मेहनत से रेत के घर बनाते हैं. उनमें बहुत उत्साह भी होता है. वो एक दूसरे को अपने रेत के घर के समीप भी नहीं आने देते कि कहीं वो उनके घरों को गिरा न दें. लेकिन उनको यह आभास बिल्कुल नहीं होता कि ये रेत के घर हैं और क्षणभंगुर हैं.

ये तो एक छोटी सी ठोकर लगने से गिर जायेंगे. लेकिन शाम को मां की आवाज आ जाती है कि बच्चों शाम हो गयी, घर आ जाओ. अब बच्चों के लिए इन रेत के घरों की कोई अहमियत नहीं रह जाती, अब अहमियत मां की आवाज की है.

याद रहे, जीवन में हमेशा एक अच्छी और बेहत्तर संभावना उपलब्ध रहती है. हमने पुराने को तब छोड़ना या तोड़ना है जब हमारे पास पहले से बेहत्तर विकल्प उपलब्ध हो.

अब बच्चे खुद ही अपने हाथों से बनाये घरों को पैर की ठोकर मारकर गिरा देते हैं और घर की तरफ चल देते हैं. ये रेत के घर उनको हमेशा के लिए खुशी नहीं दे

सकते. देखिये, कोई भी व्यवस्था जब जम जाती है और हम इसके आदी हो जाते हैं तो यह उस भैंस का रूप धारण कर लेती है जो किसान को बांध कर बैठ जाती है.

बच्चे रेत के घरों को कब गिरा पाते हैं? जब मां की आवाज आ जाती है. यानि कि जब एक नया विकल्प पैदा होता है. याद रहे, आपने **रूल** तब तोड़ना है जब आपके पास पहले से बेहत्तर विकल्प हो. किसान भैंस से बंध जाता है और भैंस किसान से. दोनों एक दूसरे के कैदी हो जाते हैं. ऐसे ही हमारे गुरु और फकीर और देवता हैं.

हमने उनको कैद कर लिया है और उन्होंने हमें कैद कर लिया है. अब जो आदमी हम दोनों के इस बंधन को तोड़ेगा वही हमारा गुरु है और यह गुरु एक सुनियोजित तरीके से प्रकट नहीं होगा. नहीं, यह अचानक पैदा होगा, बिना किसी योजना के. जिन गुरुओं के पास हम जाते हैं वो गुरु है ही नहीं, वो तो जीवन के साथ एक साजिश हैं. ये आज के सारे फ़क़ीर और गुरु बनावटी हैं.

यही कारण है कि ये धार्मिक गुरु आज तक समाज को कोई नयी दिशा नहीं दे सके. धार्मिक गुरु इसलिए समाज को कोई नयी दिशा नहीं दे सके क्योंकि उनका खुद का जीवन एक **रूल** में बंधा है, उनके पास जनता की हर समस्या का सिर्फ एक ही समाधान है और वह समाधान यह है कि दुनिया झूठ है, शरीर नाशवान है, सेक्स पाप है, ज्ञानेन्द्रियाँ हमारी दुश्मन हैं; और कि आदमी को संतुष्ट रहना चाहिए, इच्छाओं का दमन करो.

अब इन महापुरुषों से कोई पूछे कि किसान अब तक संतोष करके ही तो बैठा था. वह बस एक भैंस के दूध पर ही गुजारा कर रहा था. सारा दिन खाली बैठा रहता होगा, निठल्ला रहता होगा, सुस्त रहता होगा, जीवन में कोई जोख़िम नहीं. लेकिन जब उसने खेत में फसल उगानी शुरू की होगी तो बहुत सी दिक्कतें आईं होंगी. उसने बहुत सी चुनौतियों का सामना भी किया होगा.

जब कोई नया काम शुरू किया जाता है तो बहुत मुश्किल रहता है. लेकिन इस संघर्ष में ही तो आदमी निखरता है. उसमें बहुत से नए गुण पैदा होने शुरू हो जाते हैं. उसमें साहस, निडरता, निपुणता, कौशल, उत्साह जैसे नए नए गुण पैदा होने लगते हैं.

अब उसमें आत्मविश्वास जाग जाता है. वह फैसले लेने में निपुण हो जाता है. जिंदगी एक नयी करवट लेती है. आदमी और अच्छा करने की सोचता है. अब बताओ, अगर वह किसान आज के इन महात्माओं के कहने से संतुष्ट रहता और भैंस के आसरे ही रहता तो वो सारी उम्र उस भैंस तक ही सीमित रहता. वह कभी खुशहाल नहीं होता. क्या जिंदगी में खुशहाल होना, आगे बढ़ना कोई पाप है? लेकिन सारे धर्म और धार्मिक गुरु प्रगतिशील सोच के विरुद्ध हैं.

अब भैंस चाहे कितनी उपयोगी थी फिर भी दार्शनिक ने पहाड़ से धकेल कर उसकी हत्या कर दी. इसी तरह से चाहे हमें यह कितना लगता हो कि हमारा धर्म और आज के गुरु हमें जीवन दे रहे हैं लेकिन वास्तव में वो हमारे जीवन में जहर घोल रहे हैं. इन गुरुओं, धर्मो व् ग्रंथो को पहाड़ के ऊपर ले जाकर धक्का दे दो और हमेशा हमेशा के लिए इनसे छुटकारा पा लो.

जीवन में और बहुत कुछ है लेकिन वह तब नज़र आएगा जब हम पुराने से टूटेंगे. हमारा सारा अतीत भैंस की तरह हमारे जीवन में एक रुकावट बन कर खड़ा है. हम भारतीय सबसे ज्यादा अतितोन्मुखी हैं. इसलिए यहां कोई नयी चीज नहीं होती, कोई नए हीरो नहीं पैदा होते, कोई खोज नहीं होती.

हम पुराने गुरुओं, फकीरों, ग्रंथों, धारणाओं को बिल्कुल ठीक नहीं कर सकते क्योंकि एक बार इन्होंने हमें बांटने का काम कर दिया तो अब ये हमारे लिए कभी कुछ ठीक नहीं कर सकते. इनमें से हमेशा साम्प्रदायिकता की दुर्गन्ध आती रहेगी. ये हमें कभी नयी दिशा में नहीं जाने देंगे. कमीज की तरह हम अब इनको धोकर कभी कीटाणु रहित नहीं कर सकते.

बस इन सबको **ब्रेक** लगा दो और जीवन को नए सिरे से जीना शुरू करो. जीवन रुपी खेत में नया बीज बोओ. जरूर चमचमाती फसलें लहराएंगी. अब फैसला हमें करना है कि हम समृद्धि चाहते हैं या दरिद्रता. इसीलिए मैं ज्यादातर आपकी रूढ़िवादी सोच की आलोचना करता हूं क्योंकि जिन चीजों को आपने पकड़ा हुआ है वो ज्यादातर अतीत की देन है और हमारा अतीत हमेशा कष्टदायक रहा है. वही अतीत आज हमारा क्या भला करेगा? वो तो खुद अब एक भूत बन चुका है.

मैं आपकी इन अतीत की इन सारी चीजों को पहाड़ के ऊपर से नीचे धकेल देना चाहता हूं. मुझे पता है आप अपनी भैंस को कभी नहीं मार पाओगे. इसलिए यह काम आपके लिए मैं करूंगा. देखने में लगता है कि भैंस मर जाएगी लेकिन जीवन में विनाश ही विकास का आधार है. एक विकल्प बंद होगा तो सैंकड़ों नए रास्ते खुल जाएंगे.

ईश्वर के सहारे की लाठी जिस दिन छोड़ दोगे उसी दिन हमें अपनी शक्ति की पहचान होगी और क्रांति शुरू हो जाएगी.

जब उन कई विकल्पों में से हम एक को चुनेंगे तो हमारे अंदर थोड़ा तनाव पैदा होगा क्योंकि जब मैं कई विकल्पों में से एक को चुनता हूं तो फिर परिणामों की जिम्मेदारी मेरी होगी. अभी तक तो मैं हर चीज सामाजिक मान्यताओं के हिसाब से करता था. इसलिए मेरी जिम्मेदारी नहीं होती थी क्योंकि मैंने कौनसा कोई चुनाव किया? जब मैंने चुना ही नहीं, तो मैं जिम्मेदार भी नहीं.

अब वह किसान खेतों में बीज क्यों नहीं बोता था? क्योंकि अगर बीज बो दिया और फसल न उगी तो निराशा होगी. धार्मिक समाज में कोई विकास नहीं होता क्योंकि हर चीज का जिम्मेदार भगवान होता है. सब कुछ वही करने वाला है इसलिए आदमी की जीवन के प्रति जवाबदेही शून्य होती है.

और जब जवाबदेही नहीं तो आदमी इतनी मेहनत क्यों करेगा? मेहनत नहीं होगी तो संघर्ष नहीं होगा और संघर्ष के बिना कोई आत्मिक विकास नहीं होता. यही

कारण है धार्मिक देशों में कोई खोज नहीं होती क्योंकि उन्होंने एक बनावटी और झूठी संतुष्टि का लबादा पहन रखा होता है.

क्या आपने उपनिषद पढ़ें है?

लोग बार बार मुझे पूछ रहे हैं कि जोगा सिंह क्या आपने कभी उपनिषद/कुरान/गीता/गरुग्रंथ हैं? उनको लगता है कि जोगा सिंह बहुत बहकी बहकी बातें करता है शायद इसने हमारे ग्रंथ नहीं पढ़े? अगर पढ़ लेता तो इसकी अक्ल जरुर ठिकाने आ जाती. लोग पूछेंगे कि क्या आपने कभी गीता पढ़ी, क्या आपने बुद्ध को पढ़ा? सच में मैंने किसी भी ग्रंथ को ध्यान से नहीं पढ़ा और न ही पढ़ने की कभी जरूरत पड़ेगी?

जब मुझे यह पता है कि हर ग्रंथ यही कहेगा कि हमेशा सच बोलो, हमेशा सेक्स से दूर रहो, संतुष्ट रहो, इच्छाओं का दमन करो, ज्ञानेन्द्रियाँ आपकी दुश्मन हैं, कर्म करो और फल की इच्छा न करो, भगवान को मिलना ही आपका एकमात्र आखिरी ध्येय है तो फिर मैं किसी ग्रंथ को क्यों पढूं?

जब मैं ग्रंथों के, संतो के मूल मंत्र से ही सहमत नहीं तो मैं उनका विस्तृत विश्लेषण क्यों करूं ? दूसरी बात! मैं ग्रंथों या गुरुओं का अध्ययन तब करूं जब उनके कुछ सकारात्मक परिणाम आ रहे हों. जो लोग दिन-रात इन ग्रंथों को अपने सिर पर उठाए घूम रहे हैं, वो तो अपने निजी जीवन में भ्रष्ट हैं, बेईमान हैं. जब उनका कोई भला नहीं हुआ तो मेरा क्या होगा?

अरे भाई, केवल उस चीज को पढ़ा जाता है जिसके कुछ सकारात्मक नतीजे आ रहे हों? अगर मान लो बौद्ध लोग दूसरों के बजाय ज्यादा ईमानदार और सच्चे होते तभी मेरे अंदर एक जिज्ञासा पनपती कि चलो भाई यह देखा जाए कि बुद्ध ने क्या लिखा है? फिर मैं बुद्ध का बड़ा गहन अध्ययन भी करता.

अगर बौद्ध लोग बड़े प्रबुद्ध और विवेकशील होते तो मेरे मन में यह जिज्ञासा जरूर पनपती कि आखिर बुद्ध के अनुयायी इतने अच्छे क्यों होते हैं? चलो जरा इनके

ग्रंथ को पढ़ा जाये. शायद वहां से पता चल जाये कि बुद्ध के अनुयायी इतने प्रबुद्ध और विवेकशील क्यों होते हैं? अगर बुद्ध के भक्त भी मेरी तरह लाचार हैं, बेईमान हैं, भ्रष्ट हैं तो मेरी बुद्ध में जिज्ञासा क्यों पनपेगी?

अगर मैं आपकी कुरान पढ़ लेता हूं तो मुझे क्या फर्क पड़ने वाला है? क्योंकि जो आपने हासिल किया वही मुझे मिलेगा. आप तो गीता के लिए, कुरान के लिए सुना है जान दे भी देते हो और ले भी लेते हो. आपकी श्रद्धा और भक्ति में तो कोई कमी नहीं. आप तो कुरान के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं सुन सकते. फिर भी आपका जीवन नहीं बदला तो कृपया उसी काम में मुझे मत लगाइये.

अब जब मेरा भतीजा इंग्लैंड से वापिस आया तो मैंने पूछा कि बेटा यह बताओ कि अंग्रेज कैसे लोग हैं? वह कहने लगा, "चाचा जी, अंग्रेज निहायत ही ईमानदार लोग हैं. एक पैसे की भी हेरा फेरी नहीं करते." अब बताओ जो अंग्रेज ईमानदार होगा, वह सच्चा भी होगा, वह साम्प्रदायिक भी नहीं होगा, वह मेहनती भी होगा. जब हम जीवन के प्रति ईमानदार हो गए तो फिर बाकी सारे के सारे सिद्धांत अपने आप हमारे जीवन में आ जाते हैं.

आपको फिर अलग अलग तरह से मेहनत करने की जरूरत नहीं. ऐसा नहीं कि आप सच्चे तो हो गए अब ईमानदार होने के लिए आपको अलग से पूजा और पाठ करना है. नहीं, बिल्कुल नहीं.

अब बताओ क्या मुझे अंग्रेजों की बाइबल पढ़ने की जरूरत है यह देखने के लिए कि अंग्रेजों का धर्म कैसा है? बाइबल में तो जो लिखा है वह हजारों साल पहले लिखा गया होगा, वह हो सकता है झूठ हो. सच या झूठ वह है जो अंग्रेज आज रोज करते हैं. हजार साल पहले लिखी बाइबल कैसे आज अंग्रेजों का धर्म हो सकती है.

जो बाइबल में लिखा गया, वह हो सकता है आज बिल्कुल तर्कसंगत न हो. मायने यह नहीं रखता कि आपके ग्रंथ में क्या लिखा है? मायने यह रखता है कि आप

आज जीवन में क्या करते हो? मुझे आपके ग्रंथ पढ़ने की जरूरत नहीं. मेरे लिए वह सब कचरा है. मैं आपके जीवन को पढ़ रहा हूं. मैं गीता/कुरान/गुरुग्रंथ को कभी नहीं पढूंगा. नहीं! मैं गीता/कुरान के अनुयायियों के चरित्र को पढूंगा. धर्म किताबों या ग्रंथों में नहीं होता, धर्म तो आपके आचरण में होता है.

हमारे अंदर एक ही कमी है कि हम गुरुओं, संतों और ग्रंथों को सिर पर उठाए घूम रहे हैं. हमारे सिर पर एक जबरदस्त बोझ है और जब आदमी बोझ में होता है तो फिर वह किसी और चीज के बारे में नहीं सोचता क्योंकि उसका ध्यान हर वक्त बोझ की तरफ लगा हुआ है. वह बोझ के नीचे दबा हुआ है और परेशान है. और खास बात यह है कि उसको यह नहीं मालूम कि वह इस बोझ के कारण परेशान है.

अब मान लो, मैंने अपने बेटे को विदेश पढ़ने के लिए भेजना हो तो मैं किस देश की यूनिवर्सिटी के बारे में छानबीन करूंगा? निश्चित ही इंग्लैण्ड की किसी यूनिवर्सिटी के बारे में क्योंकि मुझे वहां से फीडबैक मिली है कि अंग्रेज बहुत ईमानदार लोग हैं. अब मैं पाकिस्तान की किसी यूनिवर्सिटी के अध्ययन में अपना समय क्यों गवा दूंगा? पाकिस्तान में तो रोज बम फूटते हैं. क्या हमें उनकी धमक यहां भारत में नहीं सुनाई देती? क्यों मैं पाकिस्तान के ग्रंथ पढूंगा? बिल्कुल नहीं.

ऐसे ही मुझे आपके ग्रंथ पढ़ने की कभी जरूरत नहीं. आपके जीवन के बारे में कहीं से कोई अच्छा संकेत मिले, तभी मैं आपके ग्रंथों को खंगालूंगा. पाकिस्तान के बारे में पूरी दुनिया जानती है कि वह कैसा देश है? क्या कोई कभी बाहर का नागरिक अपने देश को छोड़कर पाकिस्तान या हिन्दुस्तान में बसना चाहेगा?

ऐसे ही सारी दुनिया को हमारे सारे ग्रंथों और संतों के बारे में सारी जानकारी है. हमें लगता है कि हमें खुद अपने गुरुओं और ग्रंथों के बारे में जानकारी नहीं तो शायद दुनिया को भी हमारे ग्रंथों के बारे में कोई जानकारी नहीं. नहीं, यह हमारी एक बड़ी भूल है.

सारी दुनिया हमारे धर्म और हमारे धर्म ग्रंथों से वाकिफ है. आप मुझे अपने ग्रंथ पढ़ने के लिए मत कहो, आप मुझे बुद्ध के बारे में पढ़ने के लिए मत कहो. बुद्ध के बारे में पहले खुद बुद्ध के अनुयायियों को पढ़ने की जरूरत है ताकि उनको बुद्ध से मुक्ति मिल सके. ताकि उनके सिर पर जो बोझ है वह थोड़ा हल्का हो जाए.

हमें क्यों महापुरुषों की हत्या कर देनी चाहिए?

हमें बुद्ध को दोहराना नहीं, बल्कि हमें वहां से शुरू करना है जहां से बुद्ध ने छोड़ा था. उसने कह दिया 'अप्प दीपो भव' और हम भी दिन-रात 'अप्प दीपो भव' ही कहे जा रहे हैं. 'अप्प दीपो भव' बुद्ध का अनुभव था, यह मेरा नहीं हो सकता. हमें यह बात तभी कहने का हक़ है जब हमने इस बात को अपने अंदर अनुभव किया हो.

लेकिन हम तो अटक गए हैं. बुद्ध ने खोज लिया इसलिए हमें खोजना नहीं पड़ेगा, बस खोजा हुआ सच मिल गया. इसलिए बड़ा आराम है यह कह देने में कि मैं तो बौद्ध हो गया.

हम बुद्ध की ही बार बार बात करते हैं, हम अपनी कोई खोज तो करते नहीं क्योंकि हमें लगता है कि अगर हमने कोई बड़ी बात कह दी तो बुद्ध छोटा पड़ जाएगा. याद रहे, जब हम किसी और की बात मान लेते हैं तो फिर हमें जीने की जरूरत नहीं रह जाती.

हम सिर्फ बुद्ध को सही करने पर तुले हुए हैं चाहे इस प्रक्रिया में हम खुद बिल्कुल गलत सिद्ध क्यों न हो जाएं. हमारी चाहे मौत हो जाये लेकिन हम हजारों सालों तक बुद्ध को ज़िंदा रखेंगे. क्योंकि हम खुद जीना ही नहीं चाहते.

हम वास्तव में सिर्फ एक चीज से डरते हैं और वह है जीवन. बुद्ध को किसी ने आज तक चुनौती नहीं दी. यहां तक कि हिन्दू धर्म के बड़े बड़े शंकराचार्य भी बुद्ध के कथनों को गलत साबित नहीं कर पाए.

लेकिन बुद्ध हमेशा दुखी रहे होंगे कि सारे लोग सिर्फ उसके अनुयायी हैं लेकिन उसकी बात को कोई काट नहीं रहा. बुद्ध की आलोचना सिर्फ जोगा सिंह ने की

और बुद्ध को यह जानकर बड़ी ख़ुशी होती होगी कि कोई तो है इस दुनिया में जो मेरी बात को काट रहा है.

बुद्ध हमेशा परेशान रहा होगा कि उसके सत्य को किसी ने नहीं झुठलाया. सभी हां में हां मिलाए जा रहे हैं. शायद ये लोग जीवन को जी नहीं रहे. बुद्ध को यह भी परेशानी होती होगी कि मेरी शिक्षा लेकर एक भी दूसरा बुद्ध नहीं बन पाया. यहां तक कि उसका चेला आनंद जो हर वक्त उसके साथ रहता था, वह भी दूसरा बुद्ध नहीं बन पाया.

इसका मतलब है कि किसी ने नए सत्य की खोज नहीं की. सभी बुद्ध को खोजते रहे लेकिन खुद को किसी ने नहीं खोजा. सभी बुद्ध के सत्य को अपना सत्य मानते रहे. इसका मतलब बुद्ध की विचारधारा फेल हो रही थी क्योंकि सब बुद्ध को दोहराने में लगे हुए थे. दोहराने का मतलब है एक पर ही टिक जाना और बाकी के विकल्पों को नज़र अंदाज करना.

बुद्ध सोचता होगा कि यह कैसे मरे हुए अनुयायी हैं जिनके जीवन का फूल आज तक खिल ही नहीं पाया. बुद्ध को बड़ी ख़ुशी होती होगी कि कम से कम जोगा सिंह सामने आया है और वह मुझ पर चर्चा कर रहा है क्योंकि वह कुछ नया करना चाहता है.

जोगा सिंह वास्तव में वही कर रहा है जो मैंने करने के लिए कहा था. जोगा सिंह तर्क कर रहा है. कम से कम जोगा सिंह कोई नई बात तो कर रहा है. गलत या ठीक होना एक अलग विषय है, पर नई बात कहना एक अलग बात है. देख लेना बुद्ध आपके बजाय मुझे ज्यादा प्यार करते होंगे क्योंकि मैं बुद्ध की बात मानने के लिए तैयार नहीं क्योंकि मेरी जिंदगी से कुछ अलग तरह के सच निकले हैं और वो सच बुद्ध से मेल नहीं खाते.

बुद्ध ने खुद कहा था कि मेरे मरने के बाद जहां बुद्ध मिले उसकी हत्या कर देना और जोगा सिंह भी वही कर रहा है. मैं भी बुद्ध की हत्या इसलिए करना चाह रहा

हूं ताकि कोई नया बुद्ध पैदा हो सके. अगर पुराने फल टूटेंगे नहीं तो नए कैसे आएंगे?

सच पूछो तो हर गुरु, फकीर, महापुरुष की मौत के बाद उसकी हत्या कर देनी चाहिए. भूलकर भी उसका नाम बार बार मत लो जैसे हम अपने दादा, परदादा का कभी नाम नहीं लेते. जितने भी गुरु, संत हैं ये पुराने फल हैं और आप इनको टूटने नहीं दे रहे. इसलिए ये गल-सड़ गए हैं. हमें इनकी हत्या करनी होगी तभी धर्म पैदा होगा, तभी हम संपन्न होंगे.

अगर हम इन गुरुओं, संतो की हस्ती को मिटायेंगे तभी हमारी हस्ती पैदा होगी. कौन पिता चाहेगा कि उसका बेटा उसी जैसा हो? हर बाप चाहता है कि उसका बेटा उससे भी कोई बड़ा इतिहास रचे. एक दुकानदार कभी नहीं चाहेगा कि उसका बेटा दुकानदार ही बने. नहीं, वह चाहेगा कि उसका बेटा एक डॉक्टर, इंजीनियर बने. अगर एक बेटा यह कहे कि मैं भी उसी रंग के कपड़े डालूंगा जैसा मेरा पिता डालता है तो यह पिता के लिए चिंता का विषय होगा.

अगर बेटा कहे कि मैं तो वही साइकिल चलाऊंगा जो आज तक मेरे पिता ने चलायी थी तो यह पिता के लिए चिंता का विषय होगा. पिता चाहेगा कि उसका बेटा साइकिल से अब मोटरसाइकिल या कार पर आये. लेकिन एक धार्मिक आदमी वही बार बार दोहराएगा जो उसके गुरुओं, संतो या बुद्ध ने कह दिया. चाहे जिंदगी में रोज रिश्वत देता है और लेता है लेकिन मौका मिलते ही जोर जोर से कहेगा 'अप्प दीपो भव'.

यह ऐसे ही है जैसे खेल में किसी ने रिकॉर्ड बना दिया लेकिन हम इसको तोड़ने की बजाय इस रिकॉर्ड की पूजा करने लगें. हम हर आदमी के सामने यही कहने लगें कि कितना महान है यह रिकॉर्ड! धीरे धीरे, देखा देखी लोग उस रिकॉर्ड की ही पूजा करने लग जाएं और फिर एक बड़ी भीड़ में तब्दील होने लगे. फिर पैसा भी आने लगे और वहां उस रिकॉर्ड का एक आश्रम भी बन जाए.

फिर यह भीड़ एक समुदाय में बदल जाए और फिर यह समुदाय एक धर्म में बदल जाए. फिर उस धर्म के हर आदमी की हमेशा एक ही कोशिश रहेगी कि बार बार एक ही बात बोली जाए कि यह रिकॉर्ड पवित्र है ताकि इसको कोई तोड़े ना. क्योंकि अगर रिकॉर्ड टूट गया तो फिर समुदाय बिखर जाएगा. यह 'अप्प दीपो भव' भी कुछ इसी तरह का नारा है.

फिर उस धर्म के लोग हर तरह की साजिश करेंगे कि किसी तरह से यह रिकार्ड न टूटे जबकि जीवन इसी में है कि वह रिकॉर्ड टूटे. फिर हर आदमी को डराया जाएगा कि देखना इस रिकॉर्ड को तोड़ना मत, यह बहुत पवित्र है. इस तरह की व्यवस्था ही अधर्म है.

धर्म क्या है? धर्म तब पैदा होता जब कोई आता और उस रिकॉर्ड को तोड़ देता और वहीं आसन लगाकर बैठ नहीं जाता बल्कि चलता बनता है. फिर यह आज वाली बीमार व्यवस्था कम से कम नहीं पनपती. अब तब यह रिकॉर्ड तोड़ना आसान था जब गधे के ऊपर पहली बार मिट्टी फेंकी गई थी.

तब तो बस एक छोटा सा कंधों को झटका देना था. अब तो हजारों साल हो गए जब से समाज, लोग गधे के ऊपर मिट्टी फेंकते आ रहे हैं. अब तो वह जरा सा हिल भी नहीं सकता, कंधों को झकझोरने की तो बात ही छोड़ दो.

रूल्ज़ को तोड़ने के लिए मनचले और पागल लोग चाहिएं, सैद्धांतिक नहीं, आदर्शवादी नहीं. अगर हम **रूल** को समय रहते नहीं तोड़ पाए तो यह धीरे धीरे परत दर परत जमने लगता है और अंत में समाज जड़ और बेजान हो जाता है. **रूल** को तोड़ना ही धर्म है. संतों फकीरों, गुरुओं की हत्या करना ही आपका सच्चा धर्म है. उनकी हत्या ही उनको सच्ची श्रद्धांजलि है. मैंने बुद्ध पर मोर्चा संभाल लिया है आप भी कोई एक गुरु या फ़क़ीर चुन लो.

अब लोग रिकॉर्ड की पूजा क्यों शुरू कर देते हैं क्योंकि रिकॉर्ड को तोड़ना मुश्किल होता है. पुराना रिकॉर्ड तब टूटेगा जब आप नया बनाओगे और नए के लिए बहुत पसीना बहाना पड़ेगा.

अब इतनी मेहनत कौन करे? तो फिर चलो पुराने को ही हमेशा के लिए सही सिद्ध कर देते हैं और एक ऐसी साजिश रचते हैं कि कोई नया रिकॉर्ड बनाये ही ना. पुराने को पवित्र घोषित कर दो और खूब अंधविश्वास फैलाओ ताकि बहुत बड़ी भीड़ जुट जाए.

बड़ी जल्दी कामयाबी हासिल होगी. मैं बुद्ध पर इसलिए बार बार चर्चा कर रहा हूं ताकि आपको बुद्ध पर शक हो जाए. ताकि आप बुद्ध पर विचार करना शुरू कर दो. अभी आपने कभी बुद्ध पर विचार ही नहीं किया. बस किसी ने कहा और आपने मान लिया. जितना हम बुद्ध पर विचार करेंगे उतना ही हम बुद्ध को जानने लगेंगे, उतना ही वह हमारे जीवन से गिरने लगेगा और जितना वह हमारे जीवन से गायब होगा उतना ही हम धार्मिक होते चले जाएंगे.

हमने बुद्ध को बिना जाने ही मान लिया. हमें अब बुद्ध में एक भी कमी नज़र नहीं आती. यूं कहिए बुद्ध हमारे लिए अब एक अंधविश्वास है. उसने जो कहा उसको हमने आंखें बंद करके स्वीकार कर लिया लेकिन इसे हमने तर्क से नहीं जाना. इसलिए बुद्ध का आज तक समाज को कोई सार्थक योगदान नहीं. जब हम चर्चा करेंगे तो हमारा ध्यान बुद्ध पर केंद्रित होगा, फिर हमें बुद्ध में कमियां भी नज़र आने लगेंगी.

जब हमें गुरुओं और देवताओं के दोनों पक्ष नज़र आने लगेंगे तो धर्म पैदा होगा. ज्यों ही ये गुरु, देवता और ग्रंथ हमारे जीवन से गायब होंगे, हम उसी वक़्त धार्मिक हो जाएंगे.

आदमी की जिंदगी इतनी नाखुश क्यों है?

हम हजारों सालों बाद भी तनिक धार्मिक क्यों नहीं हो पाए? और अगर आज तक नहीं हो पाए तो आगे कैसे होंगे? क्या हमने धार्मिक होने के कुछ पैमानों को आज तक थोड़ा बदला? क्या हमने कुछ ऐसा किया ताकि जो आज तक नहीं हुआ वह आगे हो जाए?

मान लो, बारिश हो रही है तो क्या हमेशा बारिश होती रहेगी? नहीं, थोड़ी देर में रुक जाएगी. आप खाना खा रहे हैं तो क्या आप हमेशा खाना खाते रहेंगे? नहीं, पांच मिनट बाद खाना खाना बंद कर देंगे. आप डांस कर रहे हैं तो क्या आप हमेशा डांस करते रहेंगे? नहीं, थोड़ी देर में डांस करना बंद कर देंगे. आप कक्षा में पढ़ा रहे हैं, क्या आप कक्षा में हमेशा पढ़ाते रहेंगे? नहीं, चालीस मिनट बाद पढ़ाना बंद कर देंगे.

यहां तक सूरज की भी एक निश्चित जिंदगी है जिसके बाद यह चमकना बंद कर देगा. आप मुझे एक भी चीज ऐसी नहीं दिखा सकते जो हमेशा और लगातार यूं की यूं ही चलती रहे. एक भी चीज ऐसी नहीं है! हर चीज को **ब्रेक** लगती है. मैं सारा दिन जब कंप्यूटर पर बैठा रहता हूं तो रात आते आते मेरा शरीर टूट जाता है क्योंकि कंप्यूटर सेहत के लिए बहुत हानिकारक होता है.

इसलिए मैं हर थोड़ी देर बाद **ब्रेक** लेता हूं ताकि मैं शाम तक सही सलामत काम करता रहूं. अगर मैंने शरीर के साथ थोड़ी सी भी ज्यादती कर दी तो रात को नींद ही नहीं आती. कई बार तो दिमाग की नसें फटने लगती हैं और ऐसे लगता है कि बस आज तो जान ही निकल जाएगी. सच पूछो तो अगर मैं बिना **ब्रेक** दिए दस घंटे लगातार कंप्यूटर पर बैठ जाऊं तो मेरी मौत हो जाएगी. सबसे बढ़िया **ब्रेक** है रात! रात को मैं सो कर फिर दोबारा काम करने के काबिल हो जाता हूं.

मुझे सिर्फ **ब्रेक** एक नया जीवन देता है. **ब्रेक** के बिना जीवन संभव ही नहीं. प्रकृति लगातार अपने आपको **ब्रेक** दे रही है. पानी हमेशा पानी नहीं रहता. यह कभी वाष्प बन जाता है, तो कभी बादल, तो कभी बर्फ, तो कभी फिर पानी. पानी हमेशा एक जगह भी नहीं पड़ा रहता. समुद्र का पानी वाष्पित होकर आसमान में जाकर बादल बन जाएगा लेकिन फिर बारिश के रूप में दोबारा पता नहीं दुनिया के किस भाग में जाकर गिरेगा?

हर चीज बन रही है और टूट रही है, हर चीज लगातार रूपांतरण में है; सिर्फ एक आदमी की सोच को छोड़कर. आदमी अगर एक बार सिख बन जाता है तो हमेशा सिख ही बना रहता है. वह एक बार फैसला कर लेता है कि बाल रखने हैं तो हमेशा बाल ही रखता है, टोपी पहननी है तो हमेशा टोपी ही पहनता है.

कोई ब्रेक नहीं!

एक मुस्लिम के जीवन में कभी ऐसा मौका नहीं आता जब उसको जरा सा भी शक हो जाए कि वह आज मुस्लिम नहीं है. वह लगातार उस मुस्लिम होने के विचार को ढोता रहता है और इस तरह का विचार बहुत गहरी थकान पैदा कर देता है. इससे हम कुंठित हो जाते हैं. मुस्लिम होना या सिख होना कोई बुरी बात नहीं, बुरा है इसमें **ब्रेक** न होना.

बुरा है लगातार सिख रहना. हां, आप अगर सिख हैं तो कभी आप मुस्लिम बन जाओ, कभी हिन्दू बन जाओ फिर कोई समस्या नहीं. लेकिन एक सिख गुरु नानक को ऐसे कसकर पकड़ लेता है कि उसके पास जिंदगी में सांस लेने का मौका भी नहीं रहता जबकि उधर बुद्ध भी उतने ही महान थे. एक सिख बुद्ध पर कभी विचार ही नहीं करता. बस उसके लिए एक गुरुनानक ही सबसे सही महापुरुष हैं.

उनको अब गुरुनानक में एक भी कमी नज़र नहीं आती. एक सिख मरने के बाद गुरुनानक को अपने बच्चों को यूं का यूं पकड़ा जाता है. यानि कि कोई **ब्रेक** नहीं.

अब बताओ कि दलित गुरु गोबिंद सिंह जी को हाथ भी नहीं लगाते जबकि गुरु गोबिंद सिंह का समाज को भीम या बुद्ध जैसा ही योगदान है.

मतलब हम सारी दुनिया छोड़कर एक चीज से चिपक जाते हैं और फिर कभी इसको **ब्रेक** नहीं देते, कभी अपने पर शक नहीं करते, कभी बुद्ध पर शक नहीं करते. ऐसे में हमारे मानसिक विकास के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं.

देखिये, जिंदगी में कुछ बुरा या अच्छा नहीं, बुरा है **ब्रेक** न देना. जिंदगी के एक पक्ष को इतना कसकर पकड़ना कि बाकी के जीवन के हिस्से के प्रति अंधा हो जाना. फिर इस तरह का आदमी मानवीय कैसे हो सकता है? देखिए, एक ही विचार का मन में घूमते रहना हमारी जीवन ऊर्जा को शून्य कर देता है. बुद्ध चाहे कितने महान थे लेकिन मेरे उनको पकड़ने मात्र से बुद्ध अछूत हो जाते हैं, जहर बन जाते हैं.

जब हम विकल्प आजमाते हैं तो एक बुरा आदमी भी हमारे लिए बुद्ध से भी ज्यादा फायदेमंद हो सकता है. यही वजह है कि मैं आपको बार बार कहता हूं कि किसी महापुरुष का समाज को कोई योगदान नहीं.

अंबेडकर जी को हमने सिर्फ इसलिए पकड़ा क्योंकि अंबेडकर जी हमारी जाति में पैदा हुआ था. लेकिन मान लो अगर यही अंबेडकर जी कोई ब्राह्मण के घर पैदा हो जाता तो हम अंबेडकर जी को गालियां दे रहे होते, चाहे वह उतना ही महान क्यों न होता.

यहां से हम समझ सकते हैं कि हम कितने बड़े अंधभक्त और मूर्ख हैं और अब शायद आपको समझ आ रहा होगा कि मैं क्यों बार बार कहता हूं कि किसी संत या महापुरुष का समाज को कोई योगदान नहीं. मेरा इशारा वास्तव में हमारी मूर्खता की तरफ होता है. अब दलित हिन्दुओं का दिन-रात मजाक उड़ाते हैं कि हिन्दू अंधविश्वासी हैं लेकिन दलितों को अपनी मूर्खता बिल्कुल नज़र नहीं आती.

हां, अगर हम एक को **ब्रेक** देकर दूसरे पर भी विचार करते हैं तो फिर कोई दिक्कत नहीं. दलित के घर में अगर गुरु गोबिंद सिंह की भी फोटो मिल जाए तो काफी सुकून की बात है. लेकिन सारे ही दलित सिर्फ बुद्ध की फोटो लगाए बैठे हैं तो यह ऐसे है जैसे पानी हमेशा एक ही गड्ढे में पड़ा रहे, कभी वाष्प न बने, कभी बर्फ न बने, कभी बादल न बने. जैसे एक पेड़ कभी मरे न और आपको हमेशा एक ही जैसा खड़ा दिखाई दे.

पेड़ न बड़ा हो न छोटा हो बल्कि पेड़ हमेशा एक ही जैसा दिखे. आदमी में कोई बदलाव न हो, वह न बूढ़ा हो न जवान हो. न आदमी मरे, न पैदा हो. बस जैसा है हमेशा वैसा ही दिखे तो क्या ऐसे जीवन संभव है?

अब एक दलित के मन में एक अंबेडकर जी ही बसा हुआ है. वह उसी के नारे दिन-रात लगाए जा रहा है. लेकिन याद रखना एक ही विचार ढोने से मौत हो जाती है. एक ही बुद्ध चाहे कितना महान हो जहर से कम नहीं. एक विचार को ढोने से जीवन नष्ट हो जाता है. मैं बुद्ध को गलत नहीं कहता. वास्तव में मैं चाहता हूं कि आप बुद्ध को छोड़कर कोई और विकल्प भी आजमाएं. जीवन सिर्फ विकल्पों में है और यही धार्मिकता है.

एक पानी की बूंद सागर में पड़ी है. उसको भी तो घमंड हो सकता है कि मैं इतने बड़े सागर का हिस्सा हूं. लेकिन नहीं, इतना बड़ा सागर लेकिन बूंद का वहां दम घुटता है. वह वहां बेचैन है. तो फिर वह क्या करती है? वह बूंद बनकर ऊपर उड़ जाती है. जब सागर में थी तो उसको सागर की लंबाई, चौड़ाई और गहराई सब पता थी लेकिन जब वह एक बूंद बनकर उड़ी तो उसको कुछ मालूम नहीं कि उसका आगे क्या हश्र होगा?

सोचो, वह गुरुत्वाकर्षण की ताकत के विरुद्ध आकाश में पहुंच जाती है और एक बादल बन जाती है. रास्ते में न जाने इस नन्ही सी बूंद को कितनी दिक्कतें आई

होंगी लेकिन यह अपनी मंजिल पर पहुंच ही जाती है. अब बादल होना कितना खुशनुमा और सुखद अनुभव है. हमेशा तैरते रहना, पहाड़ों के ऊपर से गुजरना.

लेकिन पानी की बूंद बादल को भी अपना आखिरी घर नहीं बनाती. उसे लगता है कि जब सागर को छोड़कर इतना मजा आया, तो न जाने आगे आगे कितना मजा होगा? तो फिर यह बूंद बादल को भी छोड़ देती है और वर्षा के रूप में, ओले के रूप में नीचे गिरती है. ऊपर तो बहुत बड़े बर्फ के टुकड़े के रूप में गिरती है पर रास्ते में घिसते घिसते बहुत छोटा सा ओला बन जाती है.

सोचो, रास्ते में इस छोटी सी बूंद को कितना संघर्ष सहन करना पड़ा होगा. न जाने किस किस चीज से यह टकराई होगी. पता नहीं कौन कौन से तापमान में से होकर गुजरी होगी? कभी सोचो, इस पानी की बूंद ने इतनी बड़ी आफत जानबूझकर क्यों मोल ली?

अच्छी भली तो इतने विशाल समुद्र में पड़ी थी तो वहीं पड़ी रहती. ठीक जैसे आप नानक, मोहम्मद और अंबेडकर की गोद में खुश रहते हो. वहां इतने बड़े सागर की वजह से इस बूंद की एक पहचान भी थी. अब दर दर की ठोकरें खा रही है. ये ठोकरें खाना ही असल जीवन है और एक तक सीमित होना ही मौत है.

पानी की बूंद जब सागर में थी तो उसकी एक खास पहचान थी. इतने बड़े सागर का हिस्सा होकर सीना कितना चौड़ा हो जाता होगा? कौन खोना चाहेगा इस पहचान को? आदमी का तो एक बार नाम रख दिया तो वह उस नाम को सारी जिंदगी अपनी पहचान बनाए रखता है.

वह धर्म से जुड़ेगा. किस लिए? ताकि उसकी एक पहचान हो. वह देश से जुड़ेगा, जाति से जुड़ेगा. किस लिए? ताकि उसकी एक पहचान हो. शादी करेगा तो पहचान के लिए, बच्चे पैदा करेगा तो पहचान के लिए. लेकिन जीवन का यथार्थ

पहचान खोने में है ताकि जीवन किसी नई दिशा में जाए. हमें बस फिक्स नहीं होना.

आदमी गुरुओं, फकीरों, ग्रंथों को पहचान के लिए धारण करेगा. बहुत लंबी चौड़ी पढ़ाई करेगा ताकि उसकी एक पहचान हो. तिलक लगाएगा, पगड़ी बांधेगा, रोज़े रखेगा, बाल बढ़ाएगा, दाढ़ी रखेगा, कर्मकांड करेगा, त्योहार मनाएगा. क्यों? ताकि उसकी एक अलग पहचान हो. जबकि इसी पहचान को खत्म करना है और यही 'ब्रेक द रूल' है. पुरानी पहचान टूटेगी तभी तो नई बनेगी और तभी नई ऊर्जा का संचार होगा.

अब आदमी एक तरफ तो यही कहेगा कि सभी धर्म एक समान हैं पर दूसरी तरफ घर में तस्वीर सिर्फ अपने धर्म के महापुरुषों की लगाएगा. क्यों भाई, दूसरे धर्म के महापुरुष करंट मारते हैं क्या? अगर सभी धर्म एक समान हैं, तो जो तू कह रहा है वह तेरे एक्शन में भी नज़र आना चाहिए या नहीं? यानि कि आदमी जो सोचता है, करता उसके उलट है. तभी तो हमने कहा है कि ज्ञान महत्वपूर्ण नहीं, एक्शन महत्वपूर्ण है.

अगर आप ध्यान से देखो तो जब एक बूंद सागर से अलग होकर एक वाष्प बनकर ऊपर की तरफ उड़ती है तो वास्तव में अपनी पहचान ही मिटा रही होती है और कुछ नहीं कर रही होती. और फिर जब बादल बनती है तो बादल को भी अपनी पक्की और आखिरी पहचान नहीं बनाती.

वह बादल को भी छोड़ देती है. फिर कभी बूंद बनती है, कभी बर्फ का ओला. कभी किसी सीप के मुंह में जा गिरती है तो कभी किसी पेड़ का हिस्सा बन जाती है. यानि कि वह अपनी हस्ती लगातार मिटाती रहती है.

हस्ती क्यों मिटाती है? क्योंकि पुराने को **ब्रेक** देकर जब एक नई शुरुआत होती है तो उस नूतनता का एक अलग ही मज़ा है. इसमें एक ताजगी का अहसास होता है. हम जितनी बार एक नई शुरुआत करेंगे, उतनी बार ताजगी महसूस होगी. यही

जीवन का सार है. हमें बार बार बूंद की तरह खुद को काटना है ताकि हमारी पुरानी पहचान खत्म हो.

हर कहानी में एक अंत होता है और उसके बाद कुछ नहीं होता लेकिन जीवन में हर अंत के साथ एक नई शुरुआत होती है. इसलिए हम कहते हैं कि 'ब्रेक द रूल.' जितनी बार आप पुराने को **ब्रेक** लगाओगे, उतनी ही बार आपको एक नई शुरुआत करनी पड़ेगी.

दिक्कत यह है कि आदमी ने जितनी भी मर्यादाएं, **रूल**, मान्यताएं बनाई हैं, जितने भी वह त्योहार मनाता है, जितने भी वह धार्मिक चिन्ह धारण करता है ये सब आदमी को, समाज को बांटते हैं. ये सब आदमी के अहंकार को बढ़ावा देते हैं. आदमी इन सबसे अपनी पहचान बनाता है और दिक्कत यह है कि वह इस पहचान को कभी खोना नहीं चाहता.

वह हमेशा अपनी पहचान को मजबूत करता रहता है. जबकि सारी प्रकृति लगातार **ब्रेक** देती है ताकि वह अपनी पुरानी पहचान को खो सके और एक नई शुरुआत कर सके. वास्तव में विनाश ही विकास का आधार है. लेकिन आदमी जड़ है और इसने पकड़ भी जड़ चीजों को रखा है. आदमी अपनी बेकार से बेकार चीजों का भी अंत नहीं होने देना चाहता. इसलिए हजारों सालों से मानवता ने सामाजिक स्तर पर कोई तरक्की नहीं की. अब इसका हल क्या है?

आपने स्टिकर देखा होगा. जहां चिपका दो वहीं हमेशा चिपका रहेगा. आप उसको उतार दो लेकिन दोबारा फिर कहीं और चिपका दो तो चिपक तो जाएगा लेकिन उतनी मजबूती से नहीं. फिर एक बार उसे उतार दो और कहीं और चिपका दो. इस बार भी चिपक जाएगा लेकिन थोड़ा हल्का सा चिपकेगा. और अगर आपने एक बार और उतार दिया तो कहीं नहीं चिपकेगा क्योंकि उसके चिपकने की क्षमता ही खत्म हो गयी.

ऐसे ही, हमें एक धर्म को छोड़कर दूसरा अपनाना है. जब हम एक बार उखड़ेंगे तो हमारी धर्म में आस्था कमजोर पड़ती चली जाएगी. अगर हमने दूसरी, तीसरी और चौथी बार धर्म बदल लिया तो हमारी धर्म से चिपकने की क्षमता और कम हो जाएगी और अंत में हम एक स्वतंत्र प्राणी बन जाएंगे. फिर हम खुद ही एक चलता फिरता धर्म होंगे.

वैसे यह भी कोई जरूरी नहीं कि आप एक धर्म छोड़ें और दूसरे को अपनाएं. आप मेरी तरह एक ही झटके में भी धर्म को तिलांजलि दे सकते हैं लेकिन हर आदमी शायद ऐसा करने में समर्थ न हो. क्यों? क्योंकि आदमी को हमेशा कुछ पकड़ने की आदत है. अगर हम उसको धर्म, गुरु या ग्रंथ को छोड़ने के लिए कहते हैं तो वह कहता है कि अगर सब कुछ छोड़ दें तो फिर पकड़ें क्या?

कुछ तो पकड़ने के लिए दो. क्योंकि आज तक उसने हमेशा कुछ न कुछ पकड़ा है तो शायद एक झटके में धर्म को तिलांजलि न दे पाए. तो ऐसे में पकड़ो, छोड़ो, फिर पकड़ो, फिर छोड़ो और अंत में स्वतंत्र हो जाओ.

यानि कि हमारा संगठित धर्म में विश्वास कम होता चला जायेगा. अगर हमने कई धर्म बदल लिए तो हम अंत में धर्म विहीन प्राणी हो जाएंगे. फिर हम किसी धर्म से नहीं जुड़ेंगे. फिर हम चलने के लिए रास्ता नहीं तलाशेंगे. बल्कि जहां जहां हमारे पैर पड़ेंगे, वहां वहां रास्ता बनता जाएगा और कमजोर प्रवृति के लोग इन रास्तों की पूजा करेंगे.

हमें जीवन में रास्ता तलाशना नहीं. नहीं हमें अच्छा महसूस करना है और वह करना है जो हमें अच्छा लगता है तो रास्ता अपने आप प्रकट हो जाएगा.

यहां से आपको यह भी समझ आ रहा होगा कि धर्म के ठेकेदार धर्म परिवर्तन क्यों नहीं करने देते? क्योंकि अगर आदमी धर्म बदलने लगा तो फिर तो उसकी पहचान ही खत्म हो जाएगी. अब तो तरह तरह के झुंड है और हर झुंड की एक अलग पहचान है, उसका एक नाम भी है. तो ऐसे में बड़ी आसानी रहती है जब

इनसे मुखातिब होना हो. आप बस हिन्दू शब्द कहो तो करोड़ों हिन्दू हथियार लेकर उसी दिशा में दौड़ पड़ेंगे.

लेकिन अगर भीड़ पर लेबल ही नहीं लगा होगा तो इनको आपस में कैसे लड़ाओगे? इनको एक दूसरे के विरुद्ध कैसे उकसाओगे? आप कोई फरमान जारी करोगे तो लोग भड़केंगे ही नहीं. क्योंकि जिस टारगेट पर हमने निशाना लगाया वह वहां है ही नहीं. पता चला कि वह तो रातो रात हिन्दू से सिख बन गया. यानी बूंद तो रातों-रात बादल बन गई. अगर करोड़ों लोग रोज धर्म बदलें तो भारत की आधी समस्याएं रातों-रात खत्म हो जाएंगी.

अगर लोगों को आपस में लड़ाना है तो यह सुनिश्चित करो कि उनकी पहचान बहुत जबरदस्त हो. जबरदस्त पहचान होगी तभी तो हमें एक उन्मादी भीड़ मिलेगी. अगर आदमी लगातार धर्म बदले तो अंत में विवेकशील ही बनेगा क्योंकि उसको समझ आ जायेगा कि सारे धर्म कुछ नहीं बस एक अंधविश्वास है. जीवन में आगे बढ़ने का सिर्फ एक ही फार्मूला है और वह यह कि विकल्पों को आजमाओ.

यह कैसे हो सकता है कि जो धर्म, गुरु या ग्रंथ किसी और ने आपके लिए चुना वह आपके लिए हमेशा के लिए सही हो? आपके लिए क्या सही है यह तो सिर्फ आपको मालूम होना चाहिए. और वह जो सही है वह भी कोई पहले ही प्रयास में हाथ नहीं लगेगा.

जैसे हमें यह कैसे पता चला कि जिस लड़की से हमने शादी की वही हमारे लिए श्रेष्ठ है? हम दो-चार ग्रंथ पढ़ने के बाद ही तो कह सकते हैं कि मेरा ही ग्रंथ श्रेष्ठ है. पति या पत्नी के मामले में भी हमें विकल्पों को आजमाना होगा. लेकिन हमारे समाज में तो हर जगह विकल्पों पर ताले लगे हैं. मान लो मेरी शादी हो गई तो सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि मैं जिंदगी भर किसी और विकल्प के बारे में सोच भी नहीं सकता. व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि हर चीज के बहुत से विकल्प उपलब्ध हों.

हम हर जगह बंधन में हैं. ये बंधन तभी टूटेंगे जब हम विकल्पों को अजमाएंगे. हम किसी अनजान घर में लड़की भी देते हैं और चारपाई भी. फिर भी खुश होते हैं क्योंकि हमने यही सीखा है. इसके विपरीत यदि कोई लड़का हमारी गली में दो चक्कर मार जाए तो हम दुखी हो जाते हैं. और यदि तीसरा चक्कर मार दे तो हम गला पकड़ने को जाते हैं और यदि लड़की का हाथ मांग ले तो गोली मारने तक चले जाते हैं.

दो अंजान लड़के लड़की बात भी नहीं कर सकते क्योंकि वह तो एक गुनाह है. लेकिन दो अंजान शादी कर सकते हैं, यह गुनाह नहीं है! वाह रे समाज! यह भी हमारा एक सीखा हुआ व्यवहार ही है. मुझे लगता है सुख-दुख कुछ नहीं है बस एक सीखा हुआ व्यवहार है. इसलिए सुख-दुख न पैसों से आता है और न पैसों से जाता है. यह हमारे सीखे हुए व्यवहार पर निर्भर करता है कि हमें सुखी होना है या दुखी होना है.

और विडंबना यह है कि हमने जो भी आज तक सीखा है वह सीख तब की है जब हम जंगलों में रहते थे. तब से लेकर आज तक हमने जीवन में कोई सकारात्मक आयाम तो जोड़ा ही नहीं . वास्तविकता यह है कि जो भी हमने व्यवहार में ग्रहण कर लिया, वह हमारे लिए एक अंतिम लकीर बन जाती है. उसी को हम जिंदगी भर पीटते रहते हैं. अरे भाई, वह मरा हुआ सांप है, क्यों उसको मारे जा रहे हो?

थोड़ा अपना ध्यान कहीं और लगाओ क्योंकि और भी जीवन में बहुत सी संभावनाएं हैं. कुछ और करके देख लो क्या पता परिणाम अच्छे आ जाएं?

जैसा कि मैंने कहा कि पानी की बूंद लगातार अपनी हस्ती मिटाती रहती है. अब पानी की बूंद जब नीचे गिरती है तो मालूम नहीं किस चीज पर गिरेगी? मान लो किसी पेड़ पर गिर गई तो यह पेड़ का हिस्सा बन जाएगी. अगर यह किसी जानवर के मुंह में चली गई तो यह उस जानवर के अंग का एक हिस्सा बन जाएगी.

हो सकता है यह किसी नदी में भी गिर जाए तो फिर यह नदी से होते हुए खेतों में चली जाएगी और अंत में फिर सागर में विलीन हो जाएगी. यानि कि बूंद की जिंदगी में हर वक्त एक अनिश्चितता है और इस अनिश्चितता की वजह से उसकी जिंदगी में कौतूहल है.

आदमी की जिंदगी इतनी नाखुश और मायूस क्यों है? क्योंकि उसकी जिंदगी में हर चीज निश्चित है. जैसे उसके पैदा होते ही यह निश्चित हो जाता है कि उसका गुरु कौन होगा, उसका ग्रंथ कौन सा होगा, उसका देश कौन सा होगा?

अगर वह पाकिस्तान में पैदा हो गया तो यह उसका धर्म रहेगा कि उसको भारत से नफरत करनी ही करनी है. बूंद क्या कर रही थी? बूंद विकल्पों को अपना रही थी. आदमी की जिंदगी में मायूसी इसलिए है क्योंकि वह विकल्पों को नहीं अपनाता. वह पक्की नौकरी चाहता है, पक्का एक ही जगह घर चाहता है, एक ही उसका धर्म हो, एक ही नाम हो, एक ही ग्रंथ हो, एक ही देश हो और एक ही जाति हो.

अच्छा हो जब आदमी ओशो को पढ़े तो ओशोमय हो जाए. बुद्ध को पढ़े तो बुद्धमय हो जाए. गुरू गोबिंद सिंह जी को पढ़े तो उसको लगे कि इन जैसा कोई महान इंसान ही नहीं. जब आदमी अंबेडकर जी को पढ़े तो अंबेडकर जी को पढ़कर निहाल हो जाए. लेकिन आदमी करता उलट है. वह बचपन से ही कुछ पूर्वग्रहों का शिकार हो जाता है. वह बस फिर जिंदगी भर एक मरी हुई लकीर को ही पीटता रहता है.

वह जोखिम नहीं लेना चाहता. वह वही किए जा रहा है जो उसके परदादा और दादा करते थे और जो वह कर रहा है वही उसके बच्चे करेंगे. यानि कि कहीं कोई **ब्रेक** नहीं. हर आदमी लकीर का फकीर है. आपको शादी कैसे करनी है, जन्मदिन कैसे मनाना है, मरण दिन कैसे मनाना है, कपड़े कैसे पहनने हैं, खाना कैसे और

कब खाना है, पूजा कैसे करनी है, जागरण कैसे करना है, रोज़े कैसे रखने हैं सब कुछ निश्चित है.

आपको कुछ नहीं सोचना. हर चीज का समाज ने पहले से ही एक सांचा बनाया हुआ है, बस आपको इस सांचे में फिट होना है. आदमी कुछ नहीं कर रहा, बस वह हर जगह फिट होता चला जा रहा है और इसमें बहुत आराम भी है और इसी आराम में उसकी मौत हो गई है. आदमी हर जगह, हर रोज बस फिट हो रहा है और यह करते करते न जाने कब वह समाज में पूर्णतया अनफ़िट हो गया.

एक और बात! आपको मालूम है कि अगर पूरे सागर को आसमान में उड़ाकर ले जाना हो तो कितना मुश्किल है? असंभव है क्योंकि इतना भारी जलाशय भला कैसे आसमान में उड़कर जाए?

लेकिन एक एक बूंद करके यह बिल्कुल संभव हो जाता है. एक एक बूंद करके पूरा सागर पता नहीं कितनी बार आसमान के चक्कर काट लेता होगा? समाज क्यों नहीं बदलता? समाज इसलिए नहीं बदलता क्योंकि आदमी समूह से टूटता नहीं.

वह अकेला खड़ा होने से डरता है. वह भीड़ के साथ चलता है और भीड़ में कभी कोई बदलाव नहीं होता; क्योंकि भीड़ में बहुत भारी भरकम बोझ होता है. बदलाव होगा तो निजी स्तर पर होगा.

अगर हम बदलाव चाहते हैं तो हमें बूंद की तरह अकेले निकलना होगा. और दूसरा, आदमी इसलिए भी उड़ नहीं पाता क्योंकि उसके दिमाग में बहुत से देवता, गुरु, पीर पैगंबर बैठे हैं. उसके दिमाग में अतीत का बहुत बोझ है. इसलिए वह कोई उड़ान भर ही नहीं सकता.

यही कारण है कि मानव ने बहुत सी वैज्ञानिक प्रगति तो कर ली, लेकिन सामाजिक प्राणी के रूप में अभी तक उसकी कोई उपलब्धि नहीं है. आज भी उसको हर जगह पुलिस, कोर्ट और थाने की जरूरत है.

अगर हमने ऊपर उठना है तो पहले हल्का होना पड़ेगा.

हल्का कैसे होना है? आपको यह बात एक कहानी से ज्यादा अच्छे से समझ आएगी. एक बहुत बड़ा सौदागर था जो लाखों रुपये कमाने के लिए दूसरे मुल्कों में जाया करता था. उसके दोस्तों ने एक बार उसे समझाया कि तुम हमेशा समुद्र में नौका से दूसरे देशों में घूमने जाते हो लेकिन नाव तो कभी भी पलट सकती है. समुद्र में तूफान भी आते हैं. इसलिए तुम ऐसा करो, तुम तैरना सीख लो.

उस सौदागर ने कहा कि दोस्त देखो, "मैं बहुत व्यस्त आदमी हूं, मेरे पास तैराकी सीखने के लिए वक्त कहां है?" लोगों ने उसे बहुत समझाया कि हमारे साथ वाले गांव में एक तैराक है जो मात्र एक हफ्ते में तुम्हें तैरना सीखा देगा. सौदागर ने कहा, "भाई, मैं बहुत व्यस्त हूं. मैं एक हफ्ता तो क्या तीन दिन भी नहीं निकाल सकता. एक हफ्ते में तो मेरा सारा व्यापार खत्म हो जाएगा. हाँ, कभी अगर मैं थोड़ा फ्री हुआ तो तैराकी सीखने की कोशिश जरूर करूंगा"

फिर सौदागर ने कहा कि देखो, "मैं तैराकी सीखने के लिए तो समय नहीं निकाल सकता लेकिन आपके पास अगर कोई सस्ता और आसान तरीका है तो मैं अवश्य अपना लूंगा." दोस्तों ने कहा कि अगर तुम तैराकी नहीं सीखना चाहते तो कम से कम दो खाली पीपे अपने साथ रखो. अगर डूबने लगो तो कम से कम इन खाली पीपों को लेकर पानी में कूद जाना और ये पीपे तुम्हारी जान बचा लेंगे.

तो सौदागर को यह बात समझ आ गई. उसने दो पीपे जो बिल्कुल बंद थे, जिनमें पानी नहीं घुस सकता था, अपनी नाव में रख लिए. और अचानक एक दिन तूफान आया और नाव पलटने लगी. सभी लोग पानी में कूद गए क्योंकि वो सब तैरना जानते थे. लेकिन सौदागर को तो तैरना नहीं आता था. इसलिए वह अपने पीपों को ढूंढ रहा था.

अब जब वह सौदागर अपने पीपों के पास गया तो वह असमंजस में पड़ गया क्योंकि वहां सिर्फ खाली पीपे ही नहीं थे, दो भरे पीपे भी थे. दो भरे पीपों में सोने की अशर्फियां थी. उसका मन डांवांडोल हो गया कि कौनसे पीपे लेकर कूदूं?

उधर नाव तो डूब रही थी. अगर खाली पीपे लेकर कूदा तो बहुत बड़ा नुकसान हो जाएगा. आखिर वह सोने की अशर्फियों से भरे पीपे के साथ पानी में छलांग मार गया और जो उसका हश्र हुआ होगा आप समझ सकते हैं?

वह आदमी बच सकता था अगर वह एक हफ्ता तैराकी सीखने के लिए निकाल लेता. और दूसरा, उसकी जान बच सकती थी अगर वह खाली पीपे के साथ समुद्र में छलांग मारता. लेकिन वह तो भरे पीपे के साथ कूद गया. आदमी भरा पड़ा है. बचपन से ही समाज उसे भरना शुरू कर देता है. आज तक का लाखों सालों का इतिहास उसके दिमाग में ठूंस दिया जाता है. उसका दिमाग गुरुओं, फकीरों, देवताओं, परंपराओं, मान्यताओं आदि से भरा पड़ा है.

लेकिन अगर इस भवसागर से पार होना है तो खाली पीपे की तरह हल्का होना होगा. जो आदमी जितना खाली होगा उतना ही वह इस जीवन रूपी भवसागर में ज्यादा तैरने में सक्षम होगा. हमें कुछ भी नहीं पाना, हमें तो बस खोना है. खुद को खाली करना है. और यह शून्य करने की कला 'ब्रेक द रूल' बखूबी सिखाता है. बस हमें हर वक्त एक ही चीज ध्यान में रखनी है कि जिंदगी बहुत छोटी है, इसलिए फटाफट **रूल** तोड़ो.

जितनी बार हम **रूल** तोड़ेंगे, उतनी बार एक नई शुरुआत होगी. उतनी ही हमारी चेतना हल्की होगी और ऊपर उठेगी. लेकिन दिक्कत यहां पर यह है कि हर आदमी अपने पीपे को किसी न किसी तरह से भरने में लगा है. कोई सोने से भर रहा है, तो कोई मिट्टी से, तो कोई पत्थरों से. इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हमने पीपा किस चीज से भरा है?

चाहे हमने सोने से भरा है या मिट्टी से, भरा पीपा हमें ले डूबेगा. हम सभी भरे पड़े हैं और हमारी सभी की डूबने की तैयारी है. आदमी मानव के लाखों साल के अनुभव का आखिरी उत्पाद है. यानि कि हमारे अंदर मानवता का लाखों साल का अनुभव है और यह सारा इतिहास अब जड़ है क्योंकि इसमें हम कोई फेरबदल नहीं कर सकते.

यह सारा अनुभव आदमी को स्वतंत्र सोचने नहीं देता. आदमी अतीत की आंख से ही वर्तमान को देखता चला जाता है और इतने में ही वास्तविकता कुरूपित हो जाती है. हम क्या देखते हैं? हम वही देखते हैं जो हम देखना चाहते हैं यानि कि हम वही देखते हैं जो पहले से हमारे अंदर है.

अतः अगर हम एक स्वच्छंद जिंदगी जीना चाहते हैं तो पहले तो हमें अतीत से आजाद होकर वर्तमान में जीना सीखना होगा. आज से, जो अतीत का गुणगान हो रहा है उसको नकारना शुरू करो.

संस्कृति अतीत का पोषण नहीं है बल्कि अतीत से छुटकारा पाना है.

समाज में हम कितना स्वतंत्र हैं?

झुंड में रहना नुकसानदायक है या फायदेमंद? समाज का क्या फायदा है? क्या सामाजिकता को ढोना हमारा कर्तव्य है या फिर यह हमारे निजी विकास में एक बाधा है?

मान लो मैं रोज मोटर साइकिल से स्कूल पढ़ाने जाता हूं लेकिन आज मैंने फैसला किया कि आज मैं पैदल स्कूल जाऊंगा ताकि थोड़ा व्यायाम हो जाये. अब मैं पैदल जा रहा हूं लेकिन पीछे से मेरा एक विद्यार्थी आ धमकता है और कहता है कि गुरु जी आ जाओ मैं आपको स्कूल छोड़ दूंगा.

अब मैं उसको यह तो कह नहीं सकता कि मैं आज कसरत करने के मूड में हूं. मैं उसको बस टाल दूंगा कि भाई नहीं, तुम जाओ मैं आ जाऊंगा. वह फिर दोबारा बोलेगा कि गुरु जी नहीं, आ जाओ. मैं बड़ी मुश्किल से उसको टालता हूं और वह चला जाता है. अब मेरे शिष्य को बिल्कुल समझ नहीं आ रहा कि मैं उसकी सवारी पर क्यों नहीं बैठा? उसको थोड़ी मायूसी होगी. मुझे भी थोड़ी मायूसी होगी कि मैंने अपने चेले की बात नहीं मानी.

दिक्कत यह है कि अगर हम अपनी आकांक्षाओं की जिंदगी जीने लग गए तो समाज को यह बिल्कुल समझ नहीं आएगा कि आखिर हम क्या चाहते हैं? हमें भी दिक्कत होने वाली है और बात यहीं नहीं खत्म होती!

अब मेरा चेला तो चला गया लेकिन फिर मेरा एक अध्यापक साथी आ धमका. उसने अपनी मोटरसाइकिल की ब्रेक मेरे पैरों में आ मारी और पूछने लगा, "क्यों भाई जोगा सिंह आज पैदल? चलो आ जाओ, बैठो मैं आपको ले चलता हूं."

तो बताओ क्या मैं उसको समझाऊंगा कि आज मैंने कसरत का मन बनाया है? मैं नहीं बता पाऊंगा क्योंकि ऐसा समाज में होता नहीं. समाज में ऐसे थोड़े व्यायाम होता है. व्यायाम के लिए तो समाज के कुछ खास **रूल** हैं. जैसे आपको एक खास

तरह की ड्रेस डालनी है और खास तरह के जूते डालने हैं. और ऐसा भी नहीं कि हम कभी भी व्यायाम करने लगें? व्यायाम बस सुबह या शाम को ही होगा. तो ऐसे में उसको बताया नहीं जा सकता था कि मैं व्यायाम कर रहा हूं.

समाज में सिर्फ वही स्वीकार्य है जो हमेशा होता है, जो सभी लोग झुंड में करते हैं.

हम कोई नई हरकत नहीं कर सकते. अगर हम नई बात करेंगे तो उसको कोई पहचानेगा ही नहीं. मान लो, मैं अपने साथी को कहता हूं कि आज मैं पैदल चल रहा हूं क्योंकि मेरा आज कसरत का मूड है तो वह मुझे पागल मानेगा. इसलिए मैं उसको सच्चाई बता ही नहीं सकता. खैर मैं उसको भी टाल देता हूं.

लेकिन फिर मेरा एक और साथी आ धमकता है. वह भी मुझे लिफ्ट देने की बात करता है. उसको भी मैं टाल देता हूं. ऐसे ही मैं तीन को टालता हूं, चार को टालता हूं और आखिर में एक के पीछे सीट ले ही लेता हूं कि यार ये लोग मुझे आज कसरत नहीं करने देंगे. मुझे लगेगा कि मैं किस किस को समझाऊँ? ये लोग तो मुझे पागल कर देंगे.

यानि कि समाज का दोष यह है कि हम कुछ भी नया करने के लिए स्वतंत्र नहीं. हमें लगता है कि हम खाने-पीने, उठने-बैठने, पढ़ने, शादी करने के लिए स्वतंत्र हैं पर वास्तव में हैं नहीं. यह जो स्वतंत्रता हमें नज़र आ रही है, यह झूठी है. समाज में रहकर हम कभी अपनी आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सकते. समाज हमारी निजी जिंदगी को महत्व नहीं देता.

समाज में रहकर हम नई ऊंचाइयों को नहीं छू सकते और धर्म सामाजिकता के ताने-बाने को और जटिल करता है और सबसे बड़ा **रूल** भगवान, गॉड है. इस शब्द ने मानवता को सबसे ज्यादा भटकाया है. समाज सिर्फ और सिर्फ नियमों का पालन चाहता है. तो फिर क्या करें?

देखिये, समाज भी जरूरी है. समाज क्या है? समाज का मतलब है सीमाएं, बंधन. जब हम पैदल चलने जैसी छोटी सी चीज नहीं कर पाते तो हम बड़े बड़े फैसले कैसे ले सकते हैं?

यही कारण है कि हजारों सालों से हम सेक्स, औरत, धन पर कोई नई बात नहीं कह पाए. ज्यादातर हमारी मान्यताएं हजारों साल पुरानी हैं. सीमाएं भी होना जरूरी हैं क्योंकि जब हम इन सीमाओं को तोड़ते हैं तभी हमारी शक्ति और विवेक का परीक्षण होता है. सीमाओं के बिना विकास संभव नहीं. लेकिन यह भी सच है कि सीमाओं को तोड़ने से ही नई सोच जन्म लेती है.

जितना हम सीमाओं को पीछे की तरफ धकेलते हैं, उतना ही सीमाएं और विस्तृत होती चली जाती हैं और हमारा भी उतना ही विस्तार होता चला जाता है. सीमाओं का होना मतलब-संभावनाएं, अवसर. इनको जब हम तोड़ेंगे तो अनुभव कर पाएंगे कि हम भी इस ब्रह्मांड की तरह असीम हैं, अनंत हैं.

अब सवाल यह है कि इस अनंतता को कैसे छुआ जाए? अपना विस्तार कैसे किया जाए? एक पानी की बूंद की तरह कैसे पुलकित हुआ जाए?

क्या कभी आपने देखा है कि शादी में डीजे वाला कैसे हर पांच मिनट में गाना बदल देता है? क्योंकि नाचने वाला और देखने वाला पांच मिनट में ही ऊबने लगता है. अगर गाना न बदला जाए तो नाचने वाला पांच मिनट के बाद ही छोड़कर बैठ जाएगा. लेकिन गाने की बीट और रिदम बदलकर लोग सारी सारी रात नाचते रहते हैं.

एक ही गाने में बहुत दिक्कत है लेकिन एक ही गाना बदलकर दोबारा दोबारा आये तो फिर कोई दिक्कत नहीं. पर सारी रात एक ही गाने पर नाचना असंभव है. कोई नाचने वाला छोड़कर चला भी जाये तो वह भी चाय या दारू पी कर फिर दोबारा लग जाता है.

लेकिन उस मानवता का क्या होगा जो हजारों सालों से एक ही गाने पर लगातार नाचती चली जा रही है. यानि कि मेरे परदादा का गुरु भी वही, मेरे पिता का गुरु भी वही, मेरा भी वही और मेरे बच्चों का भी वही रहेगा. वही ग्रंथ हमेशा चलेगा, वही देवता हमेशा रहेगा, वही विश्वास हमेशा चलेंगे, वही रिवाज, वही सोच, वही डफली वही राग.

मेरे परदादा, पिता भी रोजे रखते थे, वही मैं और मेरे बच्चे भी रखेंगे. बुर्का देख लो, टोपी देख लो, तिलक देख लो, भगवान में विश्वास देख लो. हजारों सालों से हमारे घर की दीवारों पर वही गुरुओं, देवताओं की तस्वीरें लटकी हैं और ये ऐसे ही लटकी भी रहेंगी. इसे हम मानसिक गुलामी बोल सकते हैं.

यानि कि एक ही गाने पर हम हजारों सालों से डांस किये जा रहे हैं और खास बात यह है कि हम थकते और अकते बिल्कुल नहीं? क्यो नहीं थकते और अकते? क्योंकि जो भी हम करते आ रहे हैं वह हमारी अपनी पसंद है ही नहीं. हम किसी गुरु, किसी देवता, किसी महापुरुष को कभी खुद चुनते नहीं. यह सब हमें विरासत में मिलते हैं और मरते वक्त हम इनको अपने बच्चों को थमा जाते हैं. क्या आप लोगों को खुद कुछ आजाद विचारों से चुनने का अधिकार नहीं है जो हर इंसान का हक है.

मान लो हमें एक कार लेनी हो तो हम दस कार शोरूम में जाते हैं या नहीं? कैसे गहरा चिंतन और मंथन करते हैं? कैसे हर चीज पर चर्चा करते हैं? कई गाड़िया चला चला कर भी देखते हैं. क्योंकि यह फैसला बहुत महत्वपूर्ण है. अगले पांच सात साल हमें यह गाड़ी चलानी है, इसलिए हम हर चीज नापतोल कर लेते हैं.

लेकिन हम भगवान को बिना प्रमाणित किये मान लेते हैं. गुरुओं और देवताओं को आंख मूंदकर स्वीकार कर लेते हैं. हमें इन्हीं से जीवन की प्रेरणा लेनी है, इन्हीं ने हमारी सारी इच्छाएं पूरी करनी हैं. इन्हीं ने हमें मुक्ति देनी है, इन्हीं ने हमें भवसागर से पार करना है, इन्हीं ने हमें जीवन देना है, इन्हीं ने हमें मौत देनी है.

लेकिन इनको चुनते वक्त हम रत्ती भर चुनाव नहीं करते. फलस्वरूप, हम सारी उम्र एक ऐसे गाने पर नाचते रहते हैं जो हमारी पसंद का है ही नहीं. एक ऐसा गाना जो हमारे ऊपर थोपा गया लेकिन हैरानी यह है कि हम इनसे कभी थकते और अकते नहीं.

क्यों नहीं ऊबते?

क्योंकि हम इनको जीते ही नहीं. हम बस इनको मानने का ढोंग करते हैं. नाचने वाला जब गाने पर नाच रहा होता है तो पूरी शिद्दत से नाच रहा होता है. उसका अंग अंग नाच रहा होता है. वह कोई औपचारिकता नहीं कर रहा होता. वह दिखावे के लिए नहीं नाच रहा होता. वह किसी रस्म को नहीं निभा रहा होता.

उसको तो बस आनंद आ रहा होता है. वह इतनी तन्मयता से नाच रहा होता है कि उस गाने और नाचने को पूर्णता से जी लेता है. बस फिर वह उसी गाने पर और नहीं नाच सकता. इसलिए गाना बदलना ही पड़ेगा.

क्योंकि ये सारे गुरु, देवता और भगवान कहीं हैं ही नहीं. ये सिर्फ एक विश्वास हैं, एक कल्पना हैं; इनका वजूद बाहर कहीं नहीं. ये सिर्फ हमारे दिमाग में हैं. इसलिए इनको जिया जा ही नहीं सकता. यह ठीक ऐसे है जैसे भगवान/अल्लाह कहीं बाहर नहीं, ये सिर्फ हमारे दिमाग में हैं.

क्या आपको कभी किसी बेटे के व्यवहार से लगा कि यह तो हूबहू अपने पिता जैसा व्यवहार करता है या सोचता है? जब हम अपने पिता जैसे नहीं हो सकते तो हम गुरु नानक, बुद्ध, अम्बेडकर, राम जैसे कैसे हो सकते हैं?

तो फिर यह सारा धर्म-कर्म, भगवान, गुरु, फ़क़ीर और देवता क्या हैं? ये कुछ नहीं बस एक षड्यंत्र है, एक राजनीति है. अगर हम इनको वास्तव में जीते होते तो हम इनको जरूर बदलते, एक डीजे पर बजने वाले गाने की तरह.

अब मान लो, मैंने दस साल की उम्र में यह फैसला कर लिया कि मुझे मेरा गुरु पसंद नहीं, मैं तो इसे बदलूंगा. तो जरूर मैंने अपने पुराने गुरु का एक गहन अध्ययन तो किया होगा तभी तो इसे बदलने की सोची. मुझे अच्छा नहीं लगा तभी तो मैंने गुरु बदलने की सोची. अब अगर एक नया गुरु पकड़ना है तो निश्चित ही मैं कई गुरुओं को जांच-परख कर ही नए का चुनाव करूंगा. जब हम चुनाव करते हैं तभी उस फैसले की जिम्मेदारी भी हमारे सिर पर आन पड़ती है.

और जब हम अपने जीवन के लिए जिम्मेदार हो जाते हैं तो जीवन में समझ पैदा होनी शुरू हो जाती है. धर्म, गुरु, फकीर, ग्रंथ, धारणाएं ये सब एक ढकोसला क्यों है? क्योंकि ये सब अवास्तविक हैं. ये हमारी जिंदगी में समाज ने थोपे, क्योंकि हमने इनको कभी चुना नहीं.

हम जीवन को जी रहे हैं या ढो रहे हैं. इसका बड़ा साधारण सा पैमाना है कि मैं जो भी कर रहा हूं उसका कारण मैं हूं या कोई और? क्या मुझे पगड़ी, टोपी, बुर्का पहनकर आनंद आता है या मैं महज एक औपचारिकता निभा रहा हूं?

आज भी नब्बे प्रतिशत लड़कियों की शादी मां-बाप के दबाव में होती है लेकिन उनको भ्रम हो जाता है कि शादी उनकी मर्जी से हो रही है. मुझे मेरा पति क्यों अच्छा लगता है? हर किसी के सामने हर पत्नी कहेगी कि मेरा पति तो बहुत अच्छा है, बहुत जिम्मेदार है, बहुत प्यारा है लेकिन सवाल यह है कि आपको कैसे पता चला कि यही पति आपके लिए सर्वोत्तम है?

क्योंकि जब तक मैंने दो चार को देखा ही नहीं, आजमाया ही नहीं, तब तक मैं कैसे कह सकता हूं कि यही सबसे बढ़िया है. आप पत्नी हैं ही नहीं. आप तो बस पत्नी होने का रोल अदा कर रही हैं. ठीक वैसे ही जैसे एक फ़िल्म में एक अभिनेता हीरो का रोल अदा कर रहा है.

यानि कि शादी महज एक औपचारिकता है.

ऐसे ही हम कैसे कह सकते हैं कि मेरा ग्रंथ और गुरु ही सर्वोत्तम है? चुनाव किये बिना यह सब जानना असंभव है. चीजें जीवन से तब गिरती हैं जब हम उनको जीते हैं. जब हम चीजों के साथ इंटरैक्ट/तालमेल करते हैं तो हमारा एक नया निजी अनुभव पैदा होता है. निजी अनुभव ही सफलता की कुंजी हैं. नई नई स्वानुभूतियों से ही जागृति पैदा होती है.

नए परिणामों से जिज्ञासा बढ़ती है. फिर हम और नई चीजों को तलाशते हैं. जिसको कर लिया, जी लिया उसको भला कैसे दोबारा करोगे? क्या हम एक ही गीत पर डीजे पर सारी रात डांस कर सकते हैं? नहीं ना? अगर करेंगे तो हम एक मनोवैज्ञानिक रोग के शिकार हो जाएंगे.

क्या नियम तोड़ने से अराजकता आ जाएगी?

एक बार एक आदमी ने मुझे कहा कि जोगा सिंह आपका 'ब्रेक द रूल' बिल्कुल असफल है.

मैंने कहा, "क्यों?" कहता है, "जरा सोचो कि एक पतंग आकाश में सिर्फ तब तक ही उड़ सकती है जब तक वह डोर से बंधी है. ज्यों ही डोर टूट जाएगी, त्यों ही पतंग धरती पर आ गिरेगी. ऐसे ही **रूल्स** के बिना जीवन अधूरा है."

मैंने उसको कहा कि बात आपकी बिल्कुल सही है पर यह भी सोचो कि डोर के साथ पतंग सिर्फ एक सीमित ऊंचाई तक ही उड़ सकती है. पतंग बादलों के पार तभी जा सकती है जब वह डोर से आजाद होगी वरना कोई संभावना नहीं. वह कहने लगा कि भला डोर से टूटकर पतंग कैसे बादलों के पार चली जाएगी?

मैंने कहा यह असम्भव लगता जरूर है लेकिन डोर के साथ तो वह बादलों के पार जा ही नहीं सकती क्योंकि संभावना जीरो प्रतिशत है. हां, डोर से टूटने से कुछ संभावना जरूर बन सकती है लेकिन अभी वह संभावना हमें नज़र नहीं आएगी.

अब जब आदमी ने पक्षी की तरह उड़ना चाहा होगा तो तब भी तो लोगों ने कहा होगा कि तुम मूर्ख हो. भला इंसान पक्षियों की तरह कैसे उड़ सकता है? उड़ने के लिए तो पंख चाहिए और हमारे पास पंख हैं ही नहीं. इसलिए आदमी कभी पक्षियों की तरह नहीं उड़ सकता.

लेकिन एक दिन आदमी पक्षियों की तरह उड़ा ही नहीं बल्कि आज वह दूसरे ग्रहों पर पहुंच गया है. यानि कि आदमी के पंख नहीं थे, लेकिन पता नहीं कैसे लग गए?

मतलब, जो काम कभी पतंग के बादलों के पार जाने की तरह असंभव था वह संभव हो गया. ऐसे ही पतंग अगर डोर से टूट जाए तो बादलों के पार जाने का कोई न कोई जुगाड़ बन सकता है. कोई संभावना बनेगी लेकिन कैसे बनेगी यह अभी हमें मालूम नहीं?

ऐसे ही जब तक हम किसी भी अतीत के महापुरुष, ग्रंथ या गुरु से जुड़े हैं तब तक हम जीवन के चरम को कभी नहीं छू सकते. जीवन की समझ तभी पैदा होगी जब हम इनसे टूटेंगे और यही है 'ब्रेक द रूल.' फिर जीवन क्या क्या शक्ल लेता जाएगा अभी हमें मालूम नहीं.

अब जो यह बात हम कहते हैं कि 'अभी मालूम नहीं' यही तो प्रकृति की सुंदरता है. अगर हर चीज का पता चल जाए कि वह कैसे होगी तो जीवन का मजा ही खत्म हो जाएगा. लेकिन आदमी में आज तक कोई सकारात्मक बदलाव इसलिए नहीं हुआ क्योंकि वह हर चीज में निश्चितता चाहता है.

दूसरा, मैंने आपको बताया कि पूरा सागर आसमान के मालूम नहीं कितने चक्कर लगा लेता है? अब अगर हमें इतने बड़े सागर को लिफ्ट से आसमान में भेजना हो तो कितना मुश्किल है? असंभव है लेकिन प्रकृति के लिए यह निहायत ही आसान है. पूरा सागर पता नहीं कितनी बार बादलों के पार चला जाता है.

ऐसे ही आपको लगता होगा कि राम, मोहम्मद, नानक, बुद्ध, अंबेडकर को छोड़कर आप कैसे जिएंगे? ऐसे लगता है इनको छोड़ने से हमारा वजूद ही खत्म हो जाएगा. जबकि होता इसके बिल्कुल उलट है. ज्यों ही आप इनको नकारेंगे आपका वजूद पनपने लगेगा.

ऐसे ही अगर पतंग बादलों के पार जाना चाहे तो क्या मुश्किल है? जरूरी है बस डोर से टूटना और डोर से टूटने के बाद देख लेना कोई न कोई युक्ति निकल आएगी. ऐसे ही आदमी आज तक खुद को समझ नहीं पाया? क्योंकि आदमी की आज तक एक भी समस्या हल नहीं हुई इसलिए दर्शन तो छोड़ो, आदमी में कॉमन सेंस भी नहीं पनपी?

क्यों आदमी मानसिक और शारीरिक तौर पर बीमार है? क्यों आज भी आदमी को हर जगह पुलिस और कोर्ट चाहिए? क्यों आदमी अशांत और हिंसक है? आज भी आदमी क्यों भ्रष्ट, बेईमान और बलात्कारी है. इसका एक ही मुख्य कारण है कि आदमी की डोर खुद उसके हाथ में नहीं. पतंग की तरह उसकी डोर किसी और के हाथ में है.

उसको कंट्रोल अतीत कर रहा है. उसके दिमाग में बाबे, साधु और संत बैठे हैं. वह उन लोगों से प्रेरणा लेना चाह रहा है जो हैं ही नहीं, जिनका आज कोई वजूद ही नहीं. आदमी अगर अकेला खड़ा हो तो उसको समझाया भी जा सकता है लेकिन आदमी की समस्या यह है कि वह एक धार्मिक गिरोह का हिस्सा है.

हम आदमी को एक झुंड में नई समझ नहीं दे सकते. समझ निजी स्तर पर पैदा होती है. झुंड में समझ कभी नहीं पैदा होती. जैसे हम पूरे समुद्र को आकाश की सैर नहीं करवा सकते क्योंकि समुद्र तो बहुत भारी है. लेकिन यही काम बड़ी आसानी से हो जाता है अगर समुद्र एक एक बूंद करके वाष्पित हो कर आसमान की सैर करे?

अब आदमी झुंड से अलग होता नहीं क्योंकि उसकी पहचान ही झुंड की वजह से है. आज तक उसने अपने स्तर पर स्वतंत्र रूप से कुछ किया ही नहीं तो जाहिर है उसकी कोई स्वतंत्र सोच पैदा ही नहीं हुई. इसलिए अगर आप उसको कोई नई बात कहेंगे तो वह इसे नकार देता है.

आदमी को कभी समूह में आजादी और अध्यात्म नहीं मिलेगा. अध्यात्म एक अत्यंत निजी यात्रा है. जीवन की समझ भीड़ में चलकर कभी नहीं आएगी क्योंकि भीड़ भयभीत होती है. इसलिए वह किसी को अपने से अलग नहीं होने देती. अगर बहुत दूर बादलों के पार जाना है तो अकेले जाना होगा. सारा समुद्र इकट्ठा वहां नहीं पहुंच सकता. अध्यात्म के लिए भीड़ से टूटना होगा लेकिन भीड़ हमें बार बार डराएगी.

पूरे धर्म या समुदाय को कभी मुक्ति नहीं मिलेगी. पूरा समाज कभी **रूल** नहीं तोड़ सकता. हमें **रूल** एक एक करके तोड़ना होगा. अब हमें भी जिज्ञासा वश एक धर्म से दूसरे धर्म में छलांग मारनी थी. हमें भी यह कहना था कि आओ देखें कौनसा धर्म बढ़िया है? लेकिन नहीं, हमने बिना जांच किए ही यह स्वीकार कर लिया कि बस मेरा धर्म ही सबसे बढ़िया है.

हम दस-बीस धर्मो को परख कर ही तो कह सकते थे कि मेरा धर्म ही सबसे बढ़िया है. हमने आज तक कोई ग्रन्थ नहीं पढ़ा लेकिन दिन-रात तोते की तरह रटते जा रहे हैं कि बस मेरा ग्रंथ सबसे श्रेष्ठ है. दूसरे धर्म ग्रंथो को बिना पढ़े हम कैसे कह सकते हैं कि मेरा ग्रंथ ही श्रेष्ठ है.

लेकिन याद रखना बूंद को बादल बनने के लिए बहुत हल्का होना पड़ा. और ज्यों ही वह अपनी आध्यात्मिक यात्रा पर आगे निकली उसका शुद्धिकरण होता गया और उसके स्वाद में मिठास आ गई जबकि समुद्र का पानी तो खारा होता है और पीने के काबिल भी नहीं होता.

ऐसे ही अगर हम एक सिख हैं, हिन्दू हैं, दलित हैं, मुस्लिम हैं तो हमारे जीवन में समुद्र के पानी की तरह हमेशा कड़वाहट रहेगी. हम हमेशा अवसाद और कुंठा के शिकार रहेंगे चाहे इसका हमें आभास कभी न हो.

लेकिन देखो, कैसे बूंद इस सड़े-गले खारे पानी को छोड़कर एक लंबी यात्रा पर निकल पड़ती है और देखो उसकी जिंदगी में कितने उतार चढ़ाव आते हैं पर वह अंत में शुद्ध हो जाती है और उसमें मिठास पैदा हो जाती है. लेकिन आदमी इन उतार-चढ़ावों से बहुत डरता है.

पहली बात जो हमें यहां समझनी है कि समाज और धर्म कभी हमें स्वच्छंद उड़ने नहीं देगा. वह समुद्र की तरह हमेशा चाहेगा कि हम गुमनाम, **रूल्स** का जीवन जीकर चले जाएं. समाज और धर्म हमें बार बार डराएगा कि देखो उड़ना मत, मारे जाओगे, नर्क में चले जाओगे.

अब सबसे बड़ा सवाल यह है कि क्या मैं बूंद जैसा जीवन जीना चाहूंगा? यानि कि कभी मैं इस धर्म में चला जाता हूं, कभी दूसरे धर्म में. कभी मैं इस ग्रन्थ को पढ़ने लगता हूं तो कभी दूसरे को.

कभी मैं इस शहर में रहने लगता हूं, कभी किसी दूसरे में. कभी मैं इस देश में रह रहा हूं तो कभी दूसरे देश में. मैं नई नई जगह जाता हूं, नए नए देशों को अपना ठिकाना बनाता हूं. यानि कि मुझे यह भी नहीं मालूम कि कल मेरी जिंदगी में क्या होने वाला है. हर वक्त जीवन में एक जिज्ञासा है, एक कौतूहल है, एक रोमांच है.

यानि कि मैं एक जगह जमता नहीं. आपको देखने में लगता होगा कि सागर हमेशा एक जगह रहता है. नहीं, सारा सागर इस ब्रह्माण्ड के लगातार चक्कर काटता रहता है. सिर्फ एक इंसान ऐसा प्राणी है जो जहां बैठता है वहीं बैठ जाता है और उसी जगह को अपना घर बना लेता है.

वह चाहता है कि बस एक ही जगह उसका पक्का घर हो, एक ही पक्की नौकरी हो, एक ही धर्म हो, एक ही देश हो, एक ही पति या पत्नी हो जो सारी उम्र उससे वफादारी करे और सबसे बढ़कर हमेशा एक ही जैसा सोचना पड़े; क्योंकि अलग सोचने से तनाव पैदा होता है. भीड़ से अलग चलने से मुश्किलें बढ़ती हैं क्योंकि अलग चलने से जिम्मेदारियां बढ़ती हैं.

अब सोचो, अगर मैं एक धर्म से दूसरे धर्म में जाऊं तो बहुत समस्याएं उठ खड़ी होंगी. समस्याएं इसलिए उठ खड़ी होंगी क्योंकि दूसरे धर्म वाले मुझे कभी स्वीकार नहीं करेंगे. अब दूसरे धर्म वालों को होनी तो खुशी चाहिए थी कि कोई अपना धर्म छोड़कर उनके धर्म में आया लेकिन होता उल्ट है. जो आदमी धर्म छोड़कर आया उसको हमेशा हेय दृष्टि से देखा जाता है. उसको अपने बच्चों की शादियां करने में दिक्कत आती है.

यहां तक, अगर मैं एक राज्य से दूसरे राज्य में विस्थापित हो जाऊं तब भी मुझे वहां के स्थाई निवासी हमेशा दूसरे दर्जे का नागरिक ही समझेंगे. उनकी दृष्टि में मैं इंसान ही नहीं हूं. ऐसे ही अगर हम दूसरे देश में चले जाते हैं तो बहुत मुसीबतें आती हैं. यानि कि हम बूंद की तरह छलांग मारने के लिए आजाद नहीं हैं. हमें सामाजिक और धार्मिक **रूल्स** ने चारों तरफ से जकड़ा हुआ है.

जब सारा ही समाज बदलाव विरोधी है तो कोई कैसे बदले? कैसे कोई पानी की बूंद की तरह भ्रमण पर निकले और जीवन के अद्भुत नजारे हासिल करे? ऐसे में तो यही सही है कि जहां भी हम हैं, बस वहीं रहें. यही कारण है हमारे सामाजिक जीवन में आज तक बड़े बदलाव नहीं हुए. यही कारण है कि हमारी ज्यादातर सामाजिक और धार्मिक मान्यताएं आज भी वही हैं जो आदिमानव की थी.

सच पूछो तो मैं यहां तक भारत में भ्रमण के लिए बाहर नहीं जाता क्योंकि भारत में इस वक्त असुरक्षा का माहौल है. पुलिस नाम की कोई चीज नहीं. मान लो मुझे दूसरी जगह किसी ने लूट लिया या मेरा किसी ने बलात्कार कर दिया तो पुलिस

एफ.आई.आर. तक नहीं लिखेगी क्योंकि पुलिस स्थानीय लोगों के दबाव में काम करेगी.

एक एफ.आई.आर. दर्ज करवाने के लिए जब भारत में इतनी मशक्कत करनी पड़ती है तो ऐसे में मैं बाहर निकलने का जोखिम कैसे ले सकता हूं?

अगर हम आदिमानव और आज के मानव में तुलना करें तो हम पाएंगे कि हमारे नैतिक मूल्यों में बहुत गिरावट आई है. प्रकृति का यह नियम है कि या तो हम आगे जाएंगे या फिर पीछे. हम हमेशा एक जैसे नहीं रह सकते. अब सोचो, जंगली आदमी भी बलात्कार तो करता होगा लेकिन वह बलात्कार करने के बाद शायद औरत के जनन अंगों में पत्थर, रॉड या गन्ना नहीं ठूसता होगा. वह उसका बेरहमी से क़त्ल भी नहीं करता होगा.

अब खास बात यह कि जिसका बलात्कार होता है भला उसका इसमें क्या दोष है? दोष तो बलात्कार करने वाले का है. लेकिन समाज में पीड़िता को ही दोषी मान लिया जाता है और पीड़िता कहीं मुंह दिखाने के काबिल नहीं रहती. उसकी शादी नहीं हो पाएगी क्योंकि सभी उसको अछूत मानने लगेंगे.

वह जिंदगी भर किसी से नजरें नहीं मिला पाएगी. बताओ लड़की को उस पाप की सजा दी जाती है जो उसने कभी किया ही नहीं. दूसरी तरफ, एक बलात्कारी समाज में सीना चौड़ा करके घूमता है जैसे उसने बहुत बड़ा काम कर दिया हो. बताओ क्या आदिमानव की सोच में इस तरह का विकार रहा होगा?

तो फिर आदिमानव की तुलना में हमारे स्वभाव में गिरावट आई या उत्थान हुआ? किसी ने कहा भी है कि जिस समाज में प्रेम संबंधों को गलत समझने की मानसिकता होती है वहां नफरतें ही बसती हैं और जहां नफरतें हो वहां बलात्कार ही होते हैं.

इसी तरह से अगर आप ध्यान से देखो तो भ्रष्टाचार, शोषण, हिंसा, लालच, ठगी, क्रोध, अहंकार आदि अवगुणों की हमारे जीवन में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है.

भ्रूण हत्या, ऑनर किलिंग, दहेज़ प्रथा, क्षेत्रवाद दिन-प्रति-दिन जटिल होते जा रहे हैं. हमारा विकास तो हो रहा है. हां, यह बात अलग है कि यह विकास आगे की बजाय पीछे की तरफ ज्यादा हो रहा है.

मानसिक गुलामी इतनी बुरी क्यों होती है?

मान लो एक गाय कई सालो से अपने मालिक के घर रह रही है लेकिन मालिक को अब गाय की जरूरत नहीं रही. इसलिए वह गाय को बाहर दूर छोड़ आता है. लेकिन गाय अगले ही दिन वापिस उसके घर आ जाती है. गाय को वहां छोड़ा गया था जहां वह अपनी स्वाभाविक जिंदगी जी सकती थी.

उसको बड़ी मुश्किल से आजादी मिली थी. कई साल से वह गुलामी की जिंदगी जी रही थी. लेकिन वह इस गुलामी की इतनी अभ्यस्त हो गई थी कि वह अपनी स्वाभाविक जिंदगी को भूल चुकी थी. क्योंकि अब यही गुलामी वाली जिंदगी उसकी असली जिंदगी बन गई थी.

उसने अब अपनी उस पुरानी स्वच्छंद, नियम रहित जिंदगी को भुला दिया था. अब हर चीज उसकी जिंदगी में **रूल** के मुताबिक होती थी. समयानुसार उसको पानी पिलाया जाता था, समयानुसार उसको घास डाला जाता था. समयानुसार उसका दूध निकाला जाता था. सब कुछ गाय के स्वभाव के विरुद्ध हो रहा था लेकिन अब उसने यह गुलामी स्वीकार कर ली थी क्योंकि इस नई व्यवस्था में बड़ा आराम था, तनाव नहीं था. जबकि जंगल में गाय को खाना खाने के लिए, पानी के लिए मेहनत करनी पड़ती थी.

हमेशा तनाव रहता था क्योंकि यह भी नहीं पता होता था कि अगले क्षण क्या हो जाए? बाहर खूंखार जानवर भी थे इसलिए गाय के बच्चे को भी खतरे रहते थे. धूप बारिश का भी सामना करना पड़ता था लेकिन यहां किसान के पास सब उल्टा हो गया. हर चीज जैसे खाना-पीना, सुरक्षा, आदि की अब जिम्मेदारी मालिक की थी. गाय को अब कुछ नहीं सोचना था क्योंकि सोचने वाला सारा काम मालिक का था.

क्या आप सोच सकते हैं कि कैसे दोनों तरह की जिंदगी में जमीन आसमान का फर्क है? एक प्राकृतिक जीवन है तो दूसरा बनावटी! देखने में तो बनावटी जीवन ज्यादा सुखद है पर वास्तविकता यह है कि यह बनावटी जीवन आरामदायक जरूर है पर यह जिंदगी में से जीवन छीन लेता है.

धर्म भी इसी तरह की बनावटी सुरक्षा प्रदान करता है. धर्म के सारे सिद्धांत जीवन देते प्रतीत होते हैं पर वास्तव में वो आदमी को मौत दे रहे हैं. इस तरह से हम जहर पीकर अमर होने की उम्मीद लगाए बैठे हैं.

अब यह गाय को **रूल** में बांधना चाहे गाय के विरुद्ध था लेकिन गाय के मालिक के पक्ष में था. अब चाहे मालिक ने बुढ़ापे में गाय की उस जंजीर को काट भी दिया जिससे वह खूंटे से बंधी थी और वह इस गाय को जंगल में भी छोड़ आया लेकिन गाय तो अब बाहर की दुनिया को भूल चुकी थी.

इसलिए वह वापिस मालिक के पास आ गई. बाहर की जंजीर चाहे कट चुकी थी लेकिन अंदर की जंजीर इतनी महीन थी कि गाय को अपनी आजादी सहज नहीं लग रही थी. नियमों की जकड़न बहुत लम्बे देर से थी, इसलिए गुलामी बहुत गहरी बैठ चुकी थी. वह अपना जंगल का स्वाभाविक जीवन भूल चुकी थी.

अब गाय की गुलामी तो सिर्फ पांच साल पुरानी है फिर भी नहीं टूट रही थी. लेकिन आदमी की धार्मिक गुलामी तो हजारों साल पुरानी है. आदमी स्वतंत्र पैदा होता है लेकिन उसको हर जगह जंजीरों से बांध दिया जाता है. अतः धार्मिक गुलामी अब बहुत गहरी हो गई है.

धर्म के सारे नियम गाय के मालिक की तरह धर्म के पक्ष में हैं. धर्म आदमी को गुलाम बनाकर व्यवसाय करता है. इसके बदले में उसने आदमी को हर चीज करने का एक नियम दिया है. ठीक उसी प्रकार जैसे गाय की सारी दिनचर्या निश्चित कर दी गई थी. जैसे शादी कैसे करनी है, जन्मदिन कैसे मनाना है, मृत शरीर को कैसे जलाना है, मंदिर में कैसे प्रवेश करना है, पूजा कैसे करनी है, आदि?

धर्म हमारा गाय की तरह शोषण करेगा लेकिन बदले में हमें भगवान से मिलवाएगा, हमें इस जीवन से मुक्ति दिलवाएगा, परमानंद दिलवाएगा, स्वर्ग का टिकट भी सुनिश्चित करेगा. बस बदले में धर्म हमारा दूध निकालेगा यानि कि हमें बस हर चीज नियम से करते जाना है.

अब आदमी हजारों सालों से गुलामी झेल रहा है इसलिए वह गाय की तरह अपना असली स्वरूप बिल्कुल भूल चुका है. अगर कोई अब आदमी की इन धार्मिक जंजीरो को काट भी देगा तो आदमी तड़प कर मर जायेगा जैसे मछली पानी बिन मर जाती है.

आदमी सारी दुनिया घूम आएगा. बड़े बड़े देशों और शहरों को देख लेगा. वहां के बहुत बढ़िया बढ़िया सिस्टम देखेगा लेकिन फिर भी हरिद्वार को पवित्र मानेगा क्योंकि वहां कभी उसके गुरु या देवता गए थे. हरिद्वार के प्रति उसकी आस्था में तनिक कमी नहीं आएगी.

आप सोच सकते हैं कि अंदर की सूक्ष्म जंजीरें कितनी खतरनाक है क्योंकि ये नज़र नहीं आती ठीक ऐसे ही जैसे गाय को बाहर खुले खेतों में घास नज़र नहीं आया था. वह इस भ्रम में है कि शायद वह अपने मालिक से प्यार करती है, इसलिए वह दौड़ कर वापिस लौटती है और अपने मालिक को गले लगा लेती है. यानि कि सच को छोड़कर झूठ को गले लगा लेती है.

ऐसे ही लोग बार बार अपने फ़क़ीर, गुरु या महापुरुष के पास पहुंच जाते हैं. लोगों को यह भ्रम होता है कि शायद वो गुरु या फ़क़ीर को प्यार करते हैं जबकि वास्तविकता यह होती है कि वो एक खास विचार के गुलाम बन गए हैं. गाय की तरह इस गुरु-चेले वाली व्यवस्था में बड़ा आराम है, सुरक्षा है. लेकिन चेले को यह कभी नहीं पता चलता कि यह शांति और सुरक्षा झूठी है, बनावटी है.

जंगल में गाय के लिए लाख खतरे थे लेकिन उसकी असली जिंदगी वही थी. लेकिन मालिक के घर हर चीज नियम से है. समय पर उसको खाना मिलता है,

समय पर पानी मिलता है और हर तरह की सुरक्षा है. लेकिन यह जीवन उसके स्वभाव के विरुद्ध है लेकिन फिर भी गाय मालिक की गुलामी की जिंदगी को चुनती है.

सारे धर्मों के नियम जीवन के विरुद्ध हैं लेकिन आदमी फिर भी इस गुलामी को चुनता है क्योंकि ये सुरक्षा देते प्रतीत होते हैं. अब मान लो हमने पकड़ ही झूठ को रखा है तो फिर हम अध्यात्म को कैसे प्राप्त होंगे. यही कारण है कि धार्मिक देश पिछड़े हुए हैं और वहां अन्याय है. मानसिक गुलामी से भरा हुआ जीवन एक मरे हुए जीवन के समान है जहां असली आजादी नहीं है. जीवन एक बार मिलता है तो इसे मानसिक गुलामी में क्यों जीना?

सच पूछो तो हमें किसी अध्यात्म की जरूरत ही नहीं. हमें महान भी नहीं बनना. हमें जब गुरु या महापुरुष बनना ही नहीं तो फिर उनकी पूजा या उनपर गर्व ही क्यों? क्या कोई बुद्ध की तरह घर-बार छोड़कर जंगलों में जाना चाहेगा? बिल्कुल नहीं! तो फिर उनका नाम आप क्यों बार बार लेते हो?

हमें तो बस अपना स्वाभाविक जीवन जीना है. हम लोग वास्तव में जीवन से सहमे हुए हैं, इसलिए हमने धर्म की शरण ले ली है. ठीक वैसे ही जैसे गाय ने किसान के यहां शरण ले रखी है.

एक प्रगतिशील समाज का निर्माण कैसे हो?

कभी आपने यह सोचा कि आखिर समाज में कोई सकारात्मक बदलाव क्यों नहीं हुआ? यह जो सारा बदलाव हम देख रहे हैं यह सब तो वैज्ञानिक विकास है. लेकिन अगर हम ध्यान से देखें तो आदमी ने एक सामाजिक प्राणी के रूप में अपने अंदर आज तक कोई बहुत बड़ा बदलाव नहीं किया.

आदमी पहले से कई गुना ज्यादा बेईमान है, भ्रष्ट है, हिंसक है और बलात्कारी है. क्या यह इंसान बनने वाला काम इतना ही मुश्किल है कि आदमी दिन-रात धार्मिक होने में लगा है. भजन कर रहा है, कीर्तन कर रहा है लेकिन उसमें अध्यात्म तो

क्या पनपना था, उसके अंदर तो जो थोड़ी बहुत कॉमन सेंस थी वह भी खत्म हो गई.

आखिर ऐसा क्यों? क्यों आज तक आदमी की सोच नहीं बदली? क्यों धरती पर एक सबसे श्रेष्ठ जीव आदमी को हर जगह पुलिस चाहिए, कोर्ट चाहिए? क्यों धरती का सबसे श्रेष्ठ जीव आज इतना असुरक्षित है, हताश है, निराश है? क्यों छोटी छोटी बच्चियों के सामूहिक बलात्कार हो रहे हैं? क्या आप इन सबका कारण जानना चाहते हैं?

देखिए, जब आदमी ईंट बनाता है तो उसके पास एक सांचा होता है. वह बस उस सांचे में मिट्टी डालता है और ईंट बना देता है. अब ईंट बनाने वाले को यह बिल्कुल नहीं सोचना पड़ता कि ईंट की लंबाई, चौड़ाई ठीक गई होगी या नहीं? नहीं, वह निश्चिंत होकर ईंटें बनाए जा रहा है और सभी ईंटें एक जैसी बनती जा रही हैं.

अब इन एक जैसी ईंटों का फायदा यह है कि इनका रख-रखाव बहुत आसान होता है. अगर मान लो ये ईंटें एक जैसी न होती तो दिक्कत खड़ी हो जाती. मान लो सभी ईंटों की लंबाई-चौड़ाई बराबर न होती तो इमारत कैसे बनती? इमारत इसलिए बन पाती है क्योंकि सभी ईंटों का चरित्र एक जैसा होता है. लेकिन समाज में उलट होता है. एक अच्छे समाज का निर्माण तब होता है जब हर आदमी का चरित्र अलग हो.

एक प्रगतिशील समाज का निर्माण तब होता है जब हर आदमी की एक स्वतंत्र सोच हो. जब हर आदमी अपनी जिंदगी खुद की शर्तों पर जिए. जब हर आदमी अकेले खड़ा हो तब एक प्रगतिशील समाज का सृजन होता है. आप देख लो, प्रकृति ने हर आदमी के नैन-नक्श अलग अलग बनाए हैं. किन्हीं दो इंसानों का चेहरा आपस में नहीं मिलता.

आदमी को किसी झुंड का हिस्सा नहीं बनना और न ही किसी खास विचारधारा से जुड़ना है. आदमी की जिंदगी में सबसे बड़ी रूकावट है धर्म क्योंकि धर्म चाहता है कि उसके सारे अनुयायी एक जैसे हों. उनका खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा सब एक जैसी हों. धर्म आदमी की निजी सोच पनपने के हक में नहीं है.

अब जब मैं सातवीं या आठवीं कक्षा में पढ़ता था तो हमें सबसे पहले गाय का प्रस्ताव लिखवाया गया. अध्यापक ने सारे वाक्य बोर्ड पर लिख दिए और हमने अपनी कॉपी में नकल मार कर उतार लिए. अब अध्यापक ने सारी कक्षा को वह गाय का प्रस्ताव रटवा दिया और जब भी वह हमें गाय का प्रस्ताव लिखने के लिए कहता, हम झट से पूरा प्रस्ताव लिख देते.

मेरे ख्याल में यह गाय का प्रस्ताव अगली दस कक्षाओं तक यूं का यूं ही चलता रहा. ऐसे ही गिने-चुने दस निबंध थे जो अध्यापक ने हमें रटवा रखे थे और उन्हीं में से परीक्षा में एक जरूर आ जाता था. अब यहां तक तो ठीक था लेकिन आगे जाकर मुझे दिक्कत यह आई कि मैं सिर्फ गाय पर ही प्रस्ताव लिख पाता था. अगर मुझे आपने घोड़े पर प्रस्ताव लिखना दे दिया तो मैं नहीं लिख पाता था.

यानि कि सृजनात्मकता नहीं पैदा हुई, विवेक पैदा नहीं हुआ; जिंदगी में प्रोडक्टिविटी नहीं आई. लेकिन मैंने देखा जो बच्चे अच्छे स्कूलों से पढ़कर आए थे, उनको आप किसी भी विषय पर प्रस्ताव लिखने को दे दो, वो झट से लिख देंगे. लेकिन मैं, यहां तक कि जब मैं प्रोफेसर भी बन गया, किसी नए विषय पर बहुत अच्छा प्रस्ताव नहीं लिख पाता था.

अब जब मेरा अध्यापक प्रस्ताव लिखना सिखाता था तो उसको कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती थी. उसने हमेशा गाय पर वो दस वाक्य लिखवा दिए और सभी की कॉपी भी जांच दी. अब कॉपी जांचना बहुत आसान था. क्यों? क्योंकि सभी ने सारे वाक्य बोर्ड से नकल मार कर लिखे थे तो गलती की संभावना कम ही थी. बस अध्यापक कॉपी पर टिक मारता चला जाता.

अब जो बच्चे अच्छे स्कूलों से आते थे उनको प्रस्ताव अलग तरीके से सिखाया जाता था. उन बच्चों को हम किसी भी विषय पर प्रस्ताव लिखना दे दें तो वो झट से लिख देंगे. जिस विषय पर उन्होंने कभी प्रस्ताव नहीं लिखा उस विषय पर भी वो झट से प्रस्ताव लिख सकते हैं. यह कैसे संभव हुआ?

हिन्दी मीडियम वाले स्कूल के बच्चों की कल्पना क्यों उड़ान नहीं भर पाती? क्यों वो सारी उम्र एक सीमित से अनुभव के साथ जीते रहते हैं? इसको आप धर्म से जरा जोड़कर देखें.

कैसे एक धार्मिक आदमी सारी दुनिया के महापुरुषों को छोड़कर सिर्फ दो-चार गुरुओं, फकीरों और महापुरुषों को पकड़ लेता है. फिर यह आदमी दिन-रात ताकत लगाता है कि वह किसी तरह अपने गुरुओं के रास्ते पर चल पाए लेकिन सारी उम्र वह गुरुद्वारों और मंदिरों में टक्करें मारता रहता है पर कभी भी वह किसी गुरु या फकीर के रास्ते पर नहीं चल पाता.

उसकी सोच कुंद हो जाती है. जैसे सरकारी मीडियम वाला बच्चा उन्हीं चंद वाक्यों को बार बार लिखता रहता है ऐसे ही एक धार्मिक आदमी सारी उम्र किसी एक खास गुरु या फकीर या देवता की बार बार आरती उतारता रहता है.

उसके जीवन में कोई नया अनुभव नहीं होता. खास बात यह है कि हिन्दी मीडियम के छात्र ने निबंध में जो वाक्य लिखे वह खुद नहीं लिखे. नहीं, वह तो अध्यापक ने उन्हें दे दिए. ऐसे ही धार्मिक आदमी ने अपने गुरु या फकीर खुद नहीं चुने बल्कि समाज यह तय करता है कि उसका गुरु या देवता कौन होगा?

यहां तक कि हमने प्यार किस से करना है, शादी किस से करनी है, बच्चे कितने और कब पैदा करने हैं यह सब समाज तय करता है? ऐसी हजारों और चीजें हैं जिनको देख कर लगता है कि इन्हें हम अपनी मर्जी से करते हैं लेकिन वास्तव में वो सब चीजें हमारे ऊपर थोपी जाती हैं.

जैसे एक छात्र हर साल वही गाय का निबंध लिख देता है ऐसे ही हम एक ही धुन को दिन-रात बजाए जा रहे हैं. कहीं कोई नयापन नहीं; और इसमें कोई अचरज की बात नहीं कि हमने पिछले पचास साल में एक भी अंतरराष्ट्रीय खोज नहीं की.

ओलंपिक में हम मेडल सूची में सबसे नीचे होते हैं. हम बड़े दावे से कहते हैं कि हमारा खाना बहुत सात्विक है, हमारी सोच बहुत आध्यात्मिक है लेकिन सारे परिणाम हमारे विरुद्ध हैं. ऐसा लगता है हमारी सारी मान्यताएं एक झूठ हैं, एक अंधविश्वास है.

अब जब एक अंग्रेजी माध्यम का अध्यापक अपने बच्चों को निबंध लिखना सिखाता है तो वह उनको बने बनाए वाक्य नहीं देता. नहीं! वह उनको गाय के बारे में दस-पंद्रह सुझाव लिख देता है और बच्चे इन सुझावों के सहारे गाय पर दस-पंद्रह वाक्य बना देते हैं.

अब खास बात यह है कि किसी बच्चे का निबंध आपस में मेल नहीं खाएगा. हर बच्चे का निबंध अद्भुत होगा और उस पर उसकी छाप होगी. अब एक हिन्दू से किसी चीज के बारे में बात करो, सभी हिंदुओं की उस चीज पर एक जैसी प्रतिक्रिया आएगी. यह ठीक वैसे ही है जैसे सभी हिन्दी माध्यम के बच्चों के सभी वाक्य एक ही जैसे होते हैं.

ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए क्योंकि उन सबका अतीत एक जैसा है. उन सबको एक ही तरह के गुरु और देवता संचालित कर रहे हैं. वो सब ऐसे एक समान हैं जैसे हर ईंट की लंबाई-चौड़ाई बराबर होती है.

ये हिन्दू, सिख, मुस्लिम जो भी आदमी एक खास सांचे में फिट हो जाता है वह मृतप्राय होता है जैसे ईंट मृत है. जीवित आदमी को तो हम किसी सांचे में डाल ही नहीं सकते. जब तक हम उसको किसी सांचे में डालेंगे तब तक वह बदल चुका होगा क्योंकि वह जीवित है और लगातार बदल रहा है.

कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दी मीडियम वाला बच्चा वही बेजान से वाक्य हमेशा दोहराएगा और खास बात यह है कि वह कोई गलती नहीं करेगा. उसकी ईंट हमेशा एक जैसी आएगी. सारी कक्षा एक ही जैसे सारे वाक्य लिखेगी.

अब जब अंग्रेजी मीडियम का अध्यापक उनको सुझाव देता है और बच्चे उन सुझावों को जोड़कर एक निबंध लिखते हैं तो अध्यापक का काम बहुत बढ़ जाता है. क्योंकि हर बच्चा अपने तरीके से निबंध लिख रहा है इसलिए सभी बच्चों के सारे वाक्य अलग अलग होंगे.

किसी का निबंध आपस में मेल नहीं खाएगा. इसलिए अध्यापक को उनके निबंध जांचने में बहुत दिक्कत आएगी. हर बच्चा अलग तरह की गलती कर रहा है, इसलिए बड़े ध्यान से एक एक शब्द को जांचना पड़ रहा है. आप समझ सकते हैं कि क्यों धर्म सबको एक जैसा चाहता है?

अब अगर कक्षा में चालीस बच्चे हैं और हर बच्चा पंद्रह पंद्रह पंक्तियां लिखे और हर बच्चे की एक एक पंक्ति में न जाने कितनी गलतियां होंगी तो आपको क्या लगता है अध्यापक को सारी कॉपियां जांचने में कितना वक्त लगेगा?

मुझे याद है, मैं कक्षा में कॉपियां जांच ही नहीं पाता था. इसलिए मैं बहुत सारी कॉपियां घर उठाकर ले आता था. लेकिन हिन्दी वाले को कोई दिक्कत नहीं. वह महज पंद्रह मिनिट में सारी कॉपियां जांच सकता है क्योंकि सभी बच्चों के सारे वाक्य एक जैसे हैं और कोई बच्चा गलती नहीं करेगा.

धर्म में हर चीज निश्चित है. इसलिए कोई गलती नहीं होती. हर चीज करने का एक नियम है. गलती नहीं होती तो इसलिए कोई सीख भी नहीं होती.

शादी करने का नियम, प्यार करने का नियम, जन्म दिन मनाने का नियम, पढ़ाई का नियम, कपड़े पहनने का नियम, त्यौहार मनाने का नियम, मुर्दे को जलाने का नियम, पूजा करने का नियम, रोज़े रखने का नियम, व्रत रखने का नियम, योग

करने का नियम, ध्यान लगाने का नियम, आध्यात्मिक होने का नियम, हर चीज का एक निश्चित नियम है.

फिर आज तक हजारों सालों से बदलाव करने की हम लोगों ने क्यों नहीं सोची? जरूरी नहीं सारी चीजें सही होंगी, कमी भी हो सकती है तो उसे बदलने के लिए इंसान को ही सोचना होगा. जैसे हम लोग पुरानी गाड़ी देकर नई मॉडल की गाड़ी लेकर आते हैं तो इस नई गाड़ी में बहुत अच्छे बदलाव और सुविधा होती है. जहां इंसान को कमी दिखे उसे बदलने की जरूरत है, नहीं तो आपके जीवन में कुछ नया होगा ही नहीं.

हम कह रहे थे कि हजारों नियम हैं और हर आदमी को इन नियमों में फिट होना है और सभी स्वतः ही फिट होते जा रहे हैं. सभी फिट होते जा रहे हैं इसलिए सभी मिसफिट हो गए हैं और समाज एक बेजान समाज हो गया है. हर चीज का एक नियम है और हर आदमी नियमों का पालन करता हुआ प्रतीत हो रहा है लेकिन समाज पता नहीं क्यों, कब और कैसे उद्दंड हो गया?

अब शायद आपको थोड़ा समझ आ रहा होगा कि हम क्यों कहते हैं 'ब्रेक द रूल?' यानि कि हर चीज को करने का एक नियम है, हर आदमी कहता है कि वह नियमों का पक्का है, हर आदमी किसी न किसी गुरु को, ग्रंथ को, विचारधारा को भी मानता है. हर आदमी रोज़े भी रखता है, कोई बाल रखकर जता रहा है कि वह मर्यादा का पक्का है, तो कोई टोपी डालकर यह संदेश देना चाह रहा है कि वह अपने धर्म का पक्का है.

कोई नास्तिक या समाजवादी हो कर अपनी विचारधारा को पुख्ता कर रहा है. याद रहे, जहां मानसिक गुलामी वाला विचार आ गया, वहां जीवन की मौत है. अगर ऐसा है तो सवाल यह पैदा होता है कि चारों तरफ हमारे देश में अराजकता क्यों है? चारों तरफ अशांति क्यों है? बलात्कारियों को मौत की सजा भी दी जा रही है फिर भी बलात्कार कम क्यों नहीं हो रहे?

और तो और छोड़ो, आदमी में अध्यात्म तो क्या अभी तक कॉमन सेन्स भी नहीं पैदा हुई. कभी भीड़ वाले दिन बस में चढ़कर देखना. चाहे बस अंदर खाली हो लेकिन लोग एक दूसरे को इस तरह से धक्के मारेंगे कि यह भी नहीं देखेंगे कि कोई बूढ़ा है, या कोई बच्चे वाली औरत भी है.

कभी ध्यान से देखना कि पहला दूसरे को धक्का मार रहा है और दूसरा पहले को. जो दो-तीन लोग खिड़की से अंदर जाना चाहते हैं उनमें से कोई भी अंदर नहीं जा पा रहा क्योंकि वो सभी एक दूसरे को अंदर जाने से रोक रहे हैं. ऐसे ही सभी धर्म एक दूसरे को पनपने से रोक रहे हैं.

अगर बस के अंदर जाने वालों में कॉमन सेंस हो और एक पंक्ति में अंदर आएं तो झट से सारे लोग अंदर चले जाएंगे. लेकिन इतनी समझ कैसे आए? और ये सारे वो लोग हैं जिनका कोई एक फकीर भी है, गुरु या इष्ट भी है; ये किसी न किसी ग्रंथ के अनुयायी भी हैं. इनमें कोई समाजवादी या नास्तिक भी होगा.

ये रोज़े भी रखते हैं, ये जागरण भी करते हैं, बुर्का डालने के बड़े पक्के हैं लेकिन कमाल की बात यह है कि इनको अभी तक सलीके से बस में नहीं चड़ना आया. तो फिर ये लोग अपने समाज की जटिल समस्याओं जैसे भ्रष्टाचार, अत्याचार, शोषण को कैसे हल करेंगे?

और सबसे हास्यपद यह कि ऐसा आदमी अध्यात्म की चाह भी रखे हुए है. ऐसा आदमी उम्मीद लगाए बैठा है कि एक न एक दिन उसे परमानन्द जरूर प्राप्त होगा.

फिर हम वापस मुद्दे पर आते हैं. अंग्रेजी मीडियम का अध्यापक बच्चे को एक निबंध इस ढंग से लिखना सिखा देता है कि एक लिखने से वह बच्चा फिर हजारों निबंध लिखने के काबिल हो जाता है. फिर आप उसे कोई विषय दे दो, वह उस पर उसी वक्त एक निबंध लिख देगा. इस बच्चे को अब अध्यापक की भी जरूरत नहीं रही क्योंकि इसकी सोच उड़ान भरने लगी.

ऐसे ही आपको एक दिन नानक, महावीर, विवेकानंद, अंबेडकर की जरूरत नहीं रहेगी.

हिन्दी मीडियम वाला बच्चा हमेशा एक सीमित सी सोच के साथ जिएगा. वह उम्र भर एक निबंध तक ही सीमित रहेगा. ऐसे ही धार्मिक/समाजवादी आदमी सारी उम्र एक ही देश, एक ग्रंथ, एक ही गुरु, एक ही फकीर, एक ही देवता तक सीमित रहेगा. जैसे एक समाजवादी बार बार लेनिन और मार्क्स की ही बात करेगा. उनके भी अपने ग्रंथ हैं.

एक नास्तिक किसी ग्रंथ या गुरु को तो नहीं मानता लेकिन वह भी आस्तिकों की ही आलोचना करता रहता है. वह स्वतंत्र किसी नई दिशा में नहीं जा पाता. वह भी कुछ खास विचारों से बंधा होता है. उसकी जिंदगी में वही एक निबंध बार बार आएगा जो कुंठा पैदा करेगा.

लेकिन अंग्रेजी माध्यम वाले बच्चे की सोच को पंख लग जाएंगे. वह बहुत ऊंची उड़ान भर सकता है. एक प्रस्ताव लिखने के लिए उसके पास सृजनात्मकता है. यह फर्क है एक धार्मिक आदमी की जिंदगी में और दूसरा जो धार्मिक नहीं है.

अंग्रेजी माध्यम का बच्चा इसलिए बहुत अच्छा कर पाता है क्योंकि वह शुरू का एक निबंध खुद लिखता है. उस निबंध का एक एक वाक्य उसकी सोच से निकलता है. फलस्वरूप उसको उड़ना आ जाता है और अगर एक बार उड़ना आ गया तो फिर अनंत आकाश हमारे लिए खुल जाता है.

हिन्दी माध्यम वाले बच्चे ने उड़ना ही नहीं सीखा. उसने अपने पंख ही नहीं खोले. उसने अपना विवेक ही प्रयोग नहीं किया. वह अपने माता-पिता पर ही आश्रित रहेगा. वह घोंसले से बाहर कभी छलांग ही नहीं मारेगा. सोचो, दोनों प्रकार के जीवन में जमीन-आसमान का फर्क है. लेकिन ध्यान रहे यहां हिन्दी मीडियम और अंग्रेजी मीडियम का उदाहरण सिर्फ समझाने हेतु दिया गया है.

आखिर आदमी जीने से इतना क्यों डरता है?

अगर आप बीज को एक टेबल पर रख दो और उसके चारों तरफ बीन बजाओ तो क्या वह अंकुरित हो जाएगा, क्या वह पेड़ बन जाएगा?

नहीं कभी नहीं! क्योंकि बीज को अंकुरित होने के लिए सिर्फ और सिर्फ एक चीज चाहिए और वह है मिट्टी में जाना. बीज को अंधेरे में मिट्टी में गलना है, सड़ना है. वहीं उसको सही पोषक तत्व और खनिज पदार्थ मिलेंगे.

वहां जब हवा का, पानी का तालमेल होगा, वहां जब मिट्टी में, अंधेरे में बहुत सी रासायनिक प्रक्रियाएं चलेंगी तब बीज अंकुरित होगा. हम लाख सांप निकालने की तरह उसके चारों और बीन बजायें कि हे बीज तू उग जा, बीज नहीं उगेगा क्योंकि उसको उगने के लिए सही वातावरण ही नहीं मिला.

आप उसको याद दिलाना कि तेरे पूर्वज बहुत महान रहे, उन्होंने समाज के लिए बहुत लड़ाईयां लड़ी, वो बहुत कर्तव्य निष्ठ थे इसलिए तुम भी उनके सिद्धांतों पर चलो. तुम भी उनके रास्ते पर चलो और कृपया अंकुरित हो जाओ. देख लेना बीज अंकुरित नहीं होगा क्योंकि जो जो हम उसको समझा रहे हैं वह बीज की खुराक है ही नहीं. जब तक जो जो बीज को चाहिए, नहीं मिलेगा, तब तक बीज पेड़ नहीं बनेगा.

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उस बीज के पूर्वजों ने कितने महान काम किए थे. आप बीज को टोपी डालो, आप बीज को बुर्का डालो, उसको पगड़ी बांधों लेकिन यह सब तो बीज को चाहिए ही नहीं.

आप बस बीज को धरती में गाड़ दो वह स्वतः उग जाएगा. हम हजारों-लाखों सालों से क्या कर रहे हैं? हम आदमी के कान में यही बीन बजाए जा रहे हैं कि

हे आदमी तू इंसान बन जा. तेरी संस्कृति बहुत महान रही है. देख तेरे फकीर, तेरे गुरु कितने महान रहे. तेरे पास कितने बड़े बड़े ग्रंथ हैं?

तू जल्दी से महान बन जा, तू सच्चा बन जा, तू ईमानदार बन जा. हम उसको कीर्तन में, जागरण में, पाठ में बड़े लच्छेदार कहानियां सुना सुनाकर सम्मोहित करना चाह रहे हैं कि शायद इसके अंदर का बीज जागृत हो जाए लेकिन आज तक कोई सार्थक नतीजा नहीं निकला.

जैसे टेबल पर पड़ा पड़ा बीज गल जाता है, बदबू मारने लगता है, ऐसे ही आदमी गल चुका है इसलिए बहुत बदबू मारता है. वह बहुत से इत्र लगाता है, सेंट लगाता है लेकिन बदबू नहीं जाती.

अब आदमी को जाना तो धरती में था लेकिन वह टक्करें मार रहा है गिरजाघरों में, मंदिरों में, गुरुद्वारों में. वह सोच रहा है कि शायद महापुरुष उसको गलने से बचा लेंगे. वास्तव में, वह धरती में नहीं जाना चाहता क्योंकि वहां तो अंधेरा बहुत है और वहां दम घुट जाएगा. आखिर आदमी को क्या चाहिए? आदमी को भी बीज की तरह दो फीट के घेरे में रहना है.

बीज से सौ किलोमीटर दूर कोई कितना महान पहाड़ है, उसका बीज पर इतना असर नहीं. नहीं, बीज को वह चीज सबसे ज्यादा प्रभावित करेगी जो उसके दो फीट के क्षेत्र में होगी. ऐसे ही आदमी की संस्कृति कितनी महान है, उसके महापुरुष कितने महान रहे, ग्रंथों में क्या लिखा है? इससे आदमी का कोई लेना-देना नहीं.

लेना देना इस बात से है कि वह सारा दिन व्यवहार कैसा करता है? वह अपने से छोटे लोगों के साथ कैसा बर्ताव करता है? उसकी पत्नी से रोज इंटरेक्शन/तालमेल कैसा होता है? उसके विश्वास कैसे हैं? वह जब सुबह काम पर जाता है तो कैसा महसूस करता है?

क्या वह सोमवार काम पर जाने से पहले मायूस होता है? उसका व्यवहार तब कैसा होता है जब उसको कोई देख नहीं रहा होता? वह अपने चौकीदार से कैसे बात करता है? वह जिंदगी में रोज नए नए फैसले लेता है या नहीं? उसकी जिंदगी में कितना संघर्ष है? वह रोज कितने जोखिम लेता है? वह रोज कितनी बार असफल होता है? उसकी सेहत कैसी है?

ये सब चीजें आदमी की मिट्टी हैं. इन्हीं में वह अंकुरित होगा. ये सारी चीजें आदमी की खुराक हैं. उसको मार्गदर्शन के लिए कोई महान आत्मा नहीं चाहिए, उसको कोई ग्रंथ नहीं चाहिये. उसे तो बस मिट्टी में गाड़ दो. उसको बस जीवन से जोड़ दो, बस वह रोजमर्रा की चीजों से इन्टरेक्शन/तालमेल करने लगे.

जब हम मेज पर बीज रखकर उसके चारों ओर उसके अतीत की बीन बजा रहे होते हैं तब बीज पर कोई असर नहीं पड़ता. वह हमेशा निष्क्रिय रहता है. कोई नई शुरुआत नहीं होती क्योंकि बीज का किसी अवयव से इंटरेक्शन/तालमेल तो होता ही नहीं.

याद रहे, बीज अतीत से कोई इंटरेक्शन/तालमेल नहीं कर सकता. अतीत बस एक खयाली पुलाव है. मायने यह रखता है कि रोज हमारे दो फीट के क्षेत्र में क्या क्या घटता है? जब हम लोगों को मिलते हैं तो हमारे शरीर की केमिस्ट्री कैसी होती है?

ऐसे ही जब हमारी आस्था अतीत में हो जाती है तो हम वर्तमान से कट जाते हैं. हम अपने वातावरण से पोषण लेना बंद कर देते हैं. क्योंकि फिर हम पोषण, जिंदगी की खुराक अतीत से लेने की कोशिश करते हैं जो आज तक संभव नहीं हुआ. क्यों? क्योंकि अतीत है ही नहीं, वह सिर्फ एक कल्पना है.

हम अपनी जिंदगी कल्पनाओं, झूठी कहानियों के सहारे गुजारना चाहते हैं क्योंकि हम मिट्टी के अंदर अंधेरे में जाने से डरते हैं. हम हर वक्त जीवन को टालते रहते

हैं. देखिए, आदमी को कोई बड़ा सच हासिल नहीं करना, उसे तो सिर्फ खुद को महसूस करना है. उसे सिर्फ खुद को खुद तक सीमित करना है.

अगर उसने जीवन का सिर्फ एक निबंध खुद लिखना सीख लिया तो अनंत संभावनाएं खुल जाएंगी. सिर्फ एक चीज को जान जाने से वह सभी चीजों को जान जाएगा.

क्या आपने बुद्ध के किसी गुरु के बारे में कभी सुना है? उनका कोई गुरु नहीं था. तो फिर उनको कैसे ज्ञान हुआ? आत्मज्ञान के लिए किसी गुरु की जरूरत नहीं. इसलिए तो बुद्ध ने कहा कि खुद के मार्गदर्शक तुम खुद बनो.

खुद के पार जाने की भी जरूरत नहीं, कोई दैवीय शक्ति की भी जरूरत नहीं, कोई करिश्मा भी नहीं चाहिए. बस हम हैं और हमारा जीवन है और हमारे दो फीट के क्षेत्र में उपलब्ध लोग और हालात. जैसे बीज पेड़ बनता है, हमें 'मैं' बनना है. हमें किसी और जैसा नहीं बनना. बस खुद को अनुभव करना है. खुद की गहराइयों में उतरना है और खुद की गहराइयों में हम उतना गहरा उतरेंगे जितना हम अतीत से आजाद होंगे.

हम जहां भी खड़े हैं, वहीं दो फीट के क्षेत्र में हमारा सारा खेल है. वहीं जो लोग होंगे, जो वस्तुएं होंगी वो हमारे गुरु बन जाएंगे.

हमारी मिट्टी क्या है? किसी खास मौके पर जो भी लोग या चीजें उपलब्ध हैं वही हमारे गुरु होंगे और वही हमारी मिट्टी होगी. जैसे मैंने अच्छी तख्ती लिखनी सीखी तो मुझे अमरीक सिंह चाहिए था, बाकी सहपाठी चाहिए थे और उस अध्यापक की भी जरूरत थी.

मुझे वह खास स्याही भी चाहिए थी, वह कलम भी चाहिए थी. ये सब कुछ ही मेरे गुरु थे और खास बात यह है कि मुझे बिल्कुल उस वक्त मालूम नहीं था कि यह सब कुछ कैसे और क्यों घटित हो रहा था?

अब फिर एक सवाल पर आते हैं कि जब मैंने अच्छी तख्ती लिखनी सीखी थी तो मेरे लिए सबसे महत्वपूर्ण कौन था? यानि मेरा गुरु अमरीक सिंह था, या बाकी के सारे सहपाठी या स्याही, का कलम? देखिए किसी एक चीज को सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मानना बेमानी ही होगी.

क्या अमरीक सिंह के बिना कोई घटना घट सकती थी? क्या अध्यापक के बिना कोई बड़ी घटना घट सकती थी? क्या बाकी बच्चों के बिना कोई घटना घट सकती थी? क्या अच्छी स्याही और तिरछी कलम के बिना कोई घटना घट सकती थी? बिल्कुल नहीं!

जितना महत्वपूर्ण अध्यापक था तो उतना ही महत्वपूर्ण अमरीक सिंह था. उतने ही महत्वपूर्ण बाकी के घटक थे. हम यह कह नहीं सकते कि कलम कम महत्वपूर्ण थी. नहीं, सब बराबर महत्वपूर्ण थे.

बस एक व्यवस्था होती है और इस व्यवस्था में हर घटक बराबर महत्वपूर्ण होता है. अब गुरु या महापुरुष हमारी जिंदगी में क्यों नहीं आ सकता? क्योंकि वह अतीत है और वह कोई एक जिंदा और गतिशील व्यवस्था नहीं. वह सिर्फ एक याद है और उसमें कोई बाकी के घटक है नहीं.

किसी एक को महान नहीं बनाना, नहीं बस व्यवस्था को महान मानना है. आप किसी एक आदमी से कभी नहीं सीखते. नहीं, आप एक व्यवस्था से सीखते हो जिसमें सभी अवयव बराबर महत्वपूर्ण होते हैं.

धर्म या गुरुओं और महापुरुषों से आज तक किसी ने कुछ क्यों नहीं सीखा? क्योंकि लोगों ने सिर्फ एक धर्म, एक गुरु, एक महापुरुष को बस महान मान लिया. यह ऐसे ही है कि आप एक बीज को महान मान लो और इसलिए उसको मिट्टी में न दबाओ. आप उसकी पूजा करो, उसकी आरती उतारो लेकिन आप लाख कोशिशें कर लेना वह सड़–गल ही जाएगा. दुनिया की कोई ताकत उस बीज को बचा नहीं सकती. बीज अकेला नहीं उगता.

उसको उगने के लिए एक वातावरण या एक व्यवस्था चाहिए जो आपने दी नहीं. यानि, आपने पदार्थ की जगह विचार को तरजीह दे डाली.

ऐसा ही कुछ वह है जब आप मृत महापुरुषों पर गर्व करने लगो. अब यही महापुरुष बीज की तरह सड़-गल गए हैं और बदबू मारने लगे हैं. लेकिन आप कहोगे कि आपको तो यह बदबू नजर नहीं आती.

देखिए, आपके चरित्र से जो बदबू आ रही है वह इन महापुरुषों के आपके जीवन में सड़ने-गलने का ही नतीजा है. यह जो समाज में अनंत भ्रष्टाचार, शोषण, ठगी, चोरी, बलात्कार, अत्याचार है यह आपके शरीर से आती बदबू ही तो है.

यह बदबू आपको इसलिए नजर नहीं आती क्योंकि सभी के शरीर बदबू मार रहे हैं. कैसे भारत में अस्सी प्रतिशत दूध नकली है लेकिन कोई आवाज नहीं उठाता क्योंकि सभी के शरीर इस नकली दूध के प्रति ढल चुके हैं.

ठीक जैसे कब्ज हो जाए तो मल अंतड़ियों में सड़ने-गलने लगता है और आपका शरीर बदबू मारने लगता है क्योंकि कोई चीज अंतड़ियों में अटक गई. ठीक ऐसी व्यवस्था गुरुओं और महापुरुषों के हमारे जीवन में जमने से होती है.

जीवन में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होती हैं घटनाएं. अब कोई घटना आदमी के बिना तो घट नहीं सकती. अब सारा दारोमदार इस बात पर है कि हम किसी खास घटना को कैसे लेते हैं? यानि कि हमारे मन का झुकाव कैसा है? हमारे ख्याल कैसे हैं? हम उस घटना से कैसे इंटररेक्ट/तालमेल करते हैं? और जितना हम अतीत से आजाद होंगे उतना ही हम उस घटना के साथ स्वस्थ रूप से इंटररेक्ट/तालमेल कर पाएंगे.

मैं एक बार जब बाहरवीं कक्षा में था तो एक लड़का मेरा दोस्त बन गया और एक दिन वह मुझे अपने घर ले गया. उसने मुझे अपने ड्राइंग रूम में बैठाया और अपनी बहन को मेरे लिए पानी देकर भेजा जो मेरी ही उम्र की थी.

मुझे तब बहुत बड़ा झटका लगा था कि अभी इस मेरे दोस्त की मेरे साथ एक हफ्ते से ज्यादा लंबी दोस्ती भी नहीं हुई लेकिन आज इसने पहले ही दिन अपनी बहन को मेरे लिए पानी देकर भेज दिया.

अब यह क्या था? यह एक आम घटना थी जिसमें नायक कौन कौन हैं? मैं, मेरा दोस्त, दोस्त की बहन और पानी का आना. अब मुझे इस घटना पर अचरज क्यों हुआ? क्योंकि मैं एक गंदी मानसिकता का आदमी था और सेक्स को लेकर मेरे विचार बहुत संकीर्ण थे.

उस लड़की का पानी लेकर आना उसके लिए तो बहुत सहज बात थी और यह मेरे दोस्त के लिए भी बहुत सहज बात थी लेकिन मेरे लिए यह बहुत अजीब बात थी क्योंकि मैं संकीर्णता के माहौल में पला था.

मेरा जीवन उसी दिन से बदलने लगा. अब अगर मैं उस घटना को ऐसे लेता कि यार लड़की पानी लेकर आ गई, जरूर चालू होगी और फिर मैं धीरे धीरे उससे शारीरिक संबंध बनाता. एक विकल्प तो यह भी था और दूसरा वह जो मैंने वास्तव में किया. दूसरा यह था कि मैंने सोचा यार जोगा सिंह कितना सुंदर परिवार है यह, कितना खुलापन है, कितने दिल के साफ लोग हैं ये? मेरी तो आज लॉटरी खुल गई.

आगे चलकर मैं उस परिवार में इतना घुल मिल गया कि घर के किसी सदस्य को इस बात से कोई लेना देना नहीं होता था कि मेरे बगल में मेरा दोस्त सोया हुआ है या वो लड़की, मेरी बहन. मेरी जिंदगी उसी दिन से बदलनी शुरू हो गई और आज मैं जो कुछ भी हूं उसमें उस परिवार का बहुत ज्यादा योगदान है.

मान लो, मैं उस लड़की को फंसाने की कोशिश भी कर सकता था. वैसे तो वह लड़की वैसी थी ही नहीं. घटना के अंदर ही कुछ ऐसा पेच था कि वह लड़की फंस सकती ही नहीं थी. लेकिन सौ में से एक प्रतिशत वह फंस भी जाती और

हो सकता है मेरे उससे शारीरिक संबंध भी बन जाते, तो मैं आज एक कीड़े-मकौड़े की जिंदगी जी रहा होता. जो मेरा रूपांतरण हुआ वह कभी न होता.

याद रखें, जीवन में आप हैं और घटनाएं हैं और कुछ भी नहीं. जिन गुरुओं, फकीरों, देवताओं की हम दिन-रात पूजा करते हैं, उनका हमारे जीवन को नई दिशा देने में कोई योगदान नहीं हो सकता. एक आम आदमी ही हमारी जिंदगी बदलेगा बशर्ते हम तैयार हों.

लेकिन आदमी इन आम चीजों को अहमियत नहीं देता क्योंकि गलती से उसने कुछ लोगों को महानता की उपाधि दे दी है. किसी ग्रंथ को महान बना दिया है. सिर्फ एक ग्रंथ को क्या महान बनाया कि वह दुनिया की बाकी की सभी किताबों से टूट गया. फिर उसने दूसरे कोई ग्रंथ तो क्या पढ़ने थे, खुद का ग्रंथ भी कभी नहीं पढ़ा क्योंकि वह बीन बजाने वालों के झांसे में आ गया.

जीवन से भागने का आसान रास्ता क्या है?

एक दोस्त ने बड़ी सुंदर बात लिखी. कहता है जोगा सिंह तू हर वक्त अतीत को नकारने की बात करता है. अगर तू आज जोगा सिंह है तो तू भी तो कभी आदिमानव रहा होगा, तेरे अंदर भी तो एक आदिमानव है. तू कैसे अतीत को नकार सकता है?

हां, मेरे अंदर एक आदिमानव है लेकिन क्या अब मैं उस आदिमानव की धूप-बत्ती करूं? क्या मैं उसकी अपने घर में मूर्ति लगाऊं? क्या मैं बार बार उस आदिमानव का जिक्र करूं? और अगर मैं उस पर बार बार गर्व करता हूं, उसका जिक्र करता हूं तो इस से आदिमानव को क्या फायदा होगा? और अगर मैं उसकी उठते-बैठते आराधना करता हूं तो क्या मेरा जीवन कुछ बेहतर हो जाएगा?

बिल्कुल नहीं! बल्कि बार बार पीछे देखने से, मेरी आगे देखने की क्षमता क्षीण हो जाएगी. मान लो मैं गाड़ी चला रहा हूं और मुझे घर के ख्याल आने लगे तो मुझे आगे दिखना ही बंद हो जाएगा.

क्यो? क्योंकि दिमाग तो अंधा हो गया है. क्योंकि आंखे नहीं देखती, दिमाग देखता है और मेरा दिमाग घर के बारे में सोच रहा है. मेरे दिमाग में घर की तस्वीरें चल रही हैं. मेरी आदिमानव की स्तुति का आदिमानव को भी कोई लाभ नहीं. क्यों? क्योंकि वह आज है ही नहीं. लेकिन फिर भी अगर मैं उसका गुणगान करूंगा तो मुझे नुकसान जरूर होगा क्योंकि मैं अंधा हो जाऊंगा.

हम सब अंधे हैं और इसका सबूत है मेरे पास. जैसे अब हमारी समस्याएं तो हैं भ्रष्टाचार, अत्याचार, शोषण लेकिन इन पर समाज में कहीं कोई चर्चा नहीं. हमारे सारे चैनलों पर चल क्या रहा है? चल रहे हैं भजन और कीर्तन. मैंने एक बार भ्रष्टाचार पर एक सेमिनार बुलाया और बहुत से लोगों को बुलाया लेकिन एक भी नहीं आया. मैं बड़ा हैरान! लेकिन अगले ही दिन मैंने अपनी गली में देखा कि एक साधू आया और वहां सैकड़ों औरतें इक्कठी हो गयी.

यानि कि मैं इतना पढ़ा-लिखा प्रोफेसर भ्रष्टाचार पर दस लोग नहीं इकट्ठे कर सकता और एक अनपढ़ साधु भगवान के नाम पर सैंकड़ों लोगों को इकट्ठा कर सकता है. इससे साफ होता है कि हम अंधे है. अंधे इसलिए हैं कि हम मुर्दों को ज्यादा तरजीह देते हैं. हमारे चुनावों में कभी मुद्दों पर वोट नहीं दी जाती, हमेशा जाति और धर्म पर वोट दी जाती है.

आप ध्यान से देखो! सारे समुदाय आपस में लड़ रहे हैं और कारण है- उनका अतीत. बस उनका अतीत अलग अलग है और वो एक दूसरे के अतीत को नफरत करते हैं. जबकि सभी का वर्तमान तो एक जैसा है और उनको एकजुट करने के लिए इन सबकी वर्तमान की समस्याएं ही काफी हैं.

लेकिन ये सभी वर्तमान पर कभी एकमत नहीं होते क्योंकि ये सब इनके अतीत की वजह से बंटे हुए हैं. समाज में हर जगह टकराव है; धर्म और जाति का संघर्ष है. वर्तमान का कहीं कोई मुद्दा है ही नहीं. सभी अतीत की धारणाओं, मान्यताओं से संचालित हो रहे हैं. इसलिए हम सब अंधे हैं.

इसलिए आज तक हमारी एक भी समस्या हल नहीं हुई. वर्तमान को तो हम मुखातिब है ही नहीं. हम तो अतीत के मुर्दो का गुणगान करने में इतने मस्त हैं कि हमारी जिंदगी झंड हो गयी है लेकिन कहेंगे कि अतीत से हम बहुत सीखते हैं.

कहेंगे कि आपके अंदर भी एक आदिमानव है. अरे भाई, मेरे अन्दर आदिमानव है तो मैं क्या करूं उसका? आदिमानव ने मुझे यहां तक धकेला है इसलिए नहीं कि मैं उसकी आरती उतारता रहूं. नहीं, मुझे आगे देखना है. जैसे आदिमानव ने जीवन को एक नई दिशा दी ऐसे ही मेरी भी एक जिम्मेदारी है कि मैं जीवन को एक नई दिशा दूं. मैं इसलिए मानव नहीं बना कि मैं मंदिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों में बैठकर चिमटे और ढोल बजाता रहूं या जो हो गया उसका गुणगान करता रहूं?

एक मील के पत्थर की बस यही जिम्मेवारी है कि उसने आपको आगे धकेल दिया और आप अगले मील के पत्थर तक पहुंच गए. अब जो मील का पत्थर गुजर गया उसका आपकी जिंदगी में कोई योगदान नहीं. अब आगे आने वाले मील के पत्थर महत्वपूर्ण हैं.

भला जो हो गया, वह दोबारा कैसे हो सकता है? आदिमानव का गुणगान करूंगा तो आदिमानव मुझे क्या देगा? उसे जो देना था उसने हजार साल पहले मुझे दे दिया. आज भी उससे कोई उम्मीद रखना बेवकूफी है. उसने अपनी पुरानी संस्कृति को तोड़कर एक नई मानव जाति को जन्म दिया लेकिन मैं अगर उसकी पूजा करने लगूं तो कितनी बड़ी बेवकूफी है?

सारी मानवता क्यों दुखी है? क्योंकि उसको लगता है कि उनके गुरु, फ़क़ीर, महापुरुष ने यह यह कारनामा किया और शायद आज फिर वह दोबारा उन पर कोई कृपा कर दें. बस यही गलती है जिसका खामियाजा पूरी मानवता भुगत रही है.

हमें बार बार पीछे नहीं देखना. क्यों नहीं देखना? क्योंकि वहां अब कोई नहीं है. आदिमानव हमें अब वहां बैठा नहीं मिलेगा. ऐसे ही हमारे गुरु, फ़क़ीर, देवता अब नहीं हैं और जो हम कर रहे हैं वह सिर्फ और सिर्फ एक प्रपंच है.

यह जीवन से भागने का आसान रास्ता है. इसलिए हम सभी दुखी हैं. एक अनपढ़ आदमी तो दुखी है ही, पढ़ा-लिखा उससे भी ज्यादा दुखी है क्योंकि पढ़ा-लिखा आदमी अंधविश्वास को बड़े वैज्ञानिक ढंग से समाज में फैलाता है. इसलिए पढ़े-लिखे आदमी को सिर्फ किताबी ज्ञान का रट्टा नहीं मारना चाहिए. इस जीवन, प्रकृति से भी सीखने की जरूरत है एक नएपन के साथ.

अतीत को हम क्यों नहीं बदल सकते?

अगर हम ध्यान से देखें तो प्रकृति में कोई कल, आज और परसों नहीं है. प्रकृति किसी भूत, वर्तमान और भविष्य को नहीं जानती. प्रकृति एक सतत बहता हुआ ऊर्जा का बहाव है. यह कल, आज और परसों तो आदमी का बनाया हुआ समय का विभाजन है ताकि उसके काम सुचारू रूप से चल सकें.

अब देखा जाए तो हर पल अगले ही क्षण अतीत बन जाता है और अपनी एक धरोहर पीछे छोड़ जाता है जिसे हम वर्तमान कहते हैं. अब सारी दुनिया अतीत का बचा हुआ एक अवशेष नहीं, अपितु वर्तमान है जो हमारे सामने है. इसको अतीत का बचा अवशेष तो तब कहा जाना चाहिए अगर अतीत आज ठोस पदार्थ के रूप में कहीं पड़ा हुआ उपलब्ध होता. और अतीत बहुत बड़ा होता और वर्तमान नन्हा सा होता. तभी हम कह सकते थे कि वतमान अतीत की देन है.

अब अतीत तो कहीं है नहीं लेकिन हम एक कल्पना किये जा रहे हैं कि अतीत ने वर्तमान को पैदा किया. भला जो है ही नहीं वह किसी को कैसे पैदा कर सकता है.

हां, आप अगर यह कहो कि वर्तमान ने अतीत को जन्म दिया तो थोड़ा ठीक लगता है क्योंकि वर्तमान तो असीमित है और अतीत सीमित सा है और सिर्फ अब एक यदाश्त है. और इस अतीत का आपकी यदाश्त का आपके मन के सिवाय और कहीं वजूद नहीं.

ऐसे ही आपके गुरुओं, फकीरों, महापुरुषों ने दो दिन पहले, दो साल पहले कौनसा बड़ा कारनामा किया, इससे हमारी जिंदगी पर कोई बुरा या अच्छा असर नहीं पड़ सकता. कल तक मैं चाहे एक डाकू रहा हूं, लेकिन आज मेरे पास भी अच्छा करने या अच्छा होने के उतने ही विकल्प मौजूद हैं जितने दूसरों के लिए हैं.

जो हमने या हमारे गुरुओं, फकीरों, देवताओं ने कल कर दिया उसका अब कोई वजूद नहीं. वजूद इस बात का है कि आज, अब हम क्या करने जा रहे हैं? और जो हमने कल या पंद्रह साल पहले कर दिया, उसका अब कुछ नहीं हो सकता. उसको हम ठीक नहीं कर सकते. नहीं, हमारे पास जो ताकत है वह वर्तमान में है. हमारा नियंत्रण सिर्फ इस क्षण पर है.

देखिए, आपको गुरु या एक्सपर्ट नहीं बनना. एक्सपर्ट आदमी आज तक कभी जीवन को नई शक्ल नहीं दे पाया. एक्सपर्ट या महान इंसान सिर्फ एक बड़ा इतिहास रच सकता है, जीवन को नहीं बदल सकता.

हमारे देश में बुद्ध आए, महावीर आए, नानक आए, ओशो आए लेकिन लोगों की फितरत नहीं बदली.

कहने का मतलब है कि कोई महापुरुष या गुरु हमारी समस्या हल नहीं कर सकता.

मेरी हमेशा यही कोशिश रहती है कि मैं जीवन में कुछ ऐसा करूं कि मेरे पिता जी और मेरे महापुरुष गलत सिद्ध हो जाएं. जबकि आप हर वक्त यही कोशिश करते हो कि ऐसा कुछ न करें कि आपके पूर्वज और महापुरुष गलत सिद्ध हो जाएं.

आप मरे हुए अतीत के प्रति ईमानदार होने की चेष्टा कर रहे हो और मैं खुद के प्रति और बस यही फर्क है आपमें और मुझ में. मैं वर्तमान व्यवस्था को समर्पित हूं और आप अतीत की एक कल्पना को.

अतीत की यह दिक्कत है कि इसके रहते हम कोई नई शुरुआत नहीं कर सकते. नहीं, हर आदमी यही कहता है कि पहले पुराना हिसाब दो फिर दोस्ती का हाथ मिलाएंगे. अब अतीत, जो हो गया उसको हम कैसे ठीक कर सकते हैं? जो खाना हमने पहले खा लिया उसको अब कैसे दुरुस्त कर सकते हैं? आज हमारे हाथ में सिर्फ यह चीज है कि हम आगे से अच्छा खाना कैसे खा सकते हैं? जो आज तक खा लिया उसका कुछ नहीं हो सकता.

लेकिन सारा समाज अतीत की कहानियां सुना रहा है. दिन-रात कीर्तन, भजन चल रहे हैं. सभी जानबूझकर अतीत को आगे ला रहे हैं और दिखाएंगे जैसे हमारी हर समस्या का हल अतीत में है?

हम वर्तमान की समस्या को अतीत की चाबी से नहीं खोल सकते. हम रोगी को पुरानी खुराकें दुरुस्त करने के लिए नहीं कह सकते. अब लोग दिन-रात भगत सिंह और उधम सिंह के गले में मालाएं डाल रहे हैं लेकिन उनको यह कभी नहीं दिखाई देता कि उधम सिंह के वंशज आज भी मजदूरी कर रहे हैं. आज जो हो रहा है उससे तो सभी मुंह मोड़े खड़े हैं.

इंसान प्रत्यक्ष को भूलकर अप्रत्यक्ष, अज्ञात, अनदेखे के चक्कर में रहता है. प्रत्यक्ष क्या है? प्रत्यक्ष है भुखमरी, साम्प्रदायिकता, बेरोजगारी, रूढ़िवाद. अप्रत्यक्ष क्या है? अप्रत्यक्ष है भगवान/अल्लाह, अध्यात्म, परमानंद, मुक्ति और अतीत के सारे

महापुरुष. प्रत्यक्ष पर इस वक्त कितने लोग काम कर रहे हैं? एक भी नहीं! अप्रत्यक्ष पर इस समय कितने लोग काम कर रहे हैं? लगभग आधा देश!

अतीत को जब बिना जरूरत के दोहराया जाता है तो यह जीवन के प्रति एक गहरी साजिश हो जाती है और फिर हम अंधे हो जाते हैं. अब हमारा रोग तो है भ्रष्टाचार, अत्याचार, शोषण, बेरोजगारी, सांप्रदायिकता, जातिवाद लेकिन इन पर देश में इस वक्त कोई सेमिनार या गोष्ठी नहीं हो रही.

हां, गली गली में धार्मिक कीर्तन और जागरण जरूर चल रहे हैं. अतीत जड़ करता है, संवेदना को खत्म करता है, विभाजन पैदा करता है. विभाजन क्यों करता है? क्योंकि जो हो गया आदमी उस को ही सही ठहराता रहता है. आदमी के हाथ में समस्याएं तो वर्तमान की हैं लेकिन उसके हाथ अतीत के कचरे से भरे पड़े हैं.

ध्यान से देखना हमारा समाज अतीत से सीखने की दिन-रात कोशिश कर रहा है लेकिन लगातार पतन की तरफ जा रहा है. हालात जटिल से जटिल होते जा रहे हैं लेकिन हम अपनी मान्यताओं का पुनरावलोकन कभी नहीं करेंगे. बार बार वही बातें दोहराएंगे जो हजारों साल पहले कही गयी थी .

हर आदमी यही कहेगा कि अतीत बहुत प्रेरणा देता है, सत्य तो शाश्वत होता है, लोग सिद्धान्तों पर नहीं चल रहे, लोग हमारी संस्कृति को नहीं अपना रहे, संत तो सही हैं लोग उनको न माने तो क्या करें आदि आदि. ये सब बीमार मन के लक्षण हैं.

अच्छा आप ध्यान से देखो हम मुगलों और अंग्रेजों के एक हजार साल गुलाम रहे लेकिन हमनें अपनी इस गलती से आज तक क्या सीखा? इस गुलामी से बाहर आकर आपने समाज के कौनसे पैमाने को ठीक कर दिया? कौनसी वयस्था आपने दुरुस्त कर दी?

कौनसी चीज पवित्र है?

तो आप पूछोगे कि अगर हमारे गुरु, फकीर, देवता, महापुरुष पवित्र नहीं हैं तो फिर कौनसी चीज पवित्र है?

कौनसी चीज पवित्र है? पवित्र वह चीज है जो फैलती है. इस सृष्टि की हर चीज एक ऊर्जा है और ऊर्जा का हमेशा फैलाव होता है. जैसे कोई चीज मरती है तो उसके अलग अलग अंश इस ब्रह्मांड के जर्रे जर्रे में समा जाते हैं.

यह ब्रह्मांड लगातार फ़ैल रहा है, इसलिए यह पवित्र है. अगर यह फैले ना तो इसका अस्तित्व ही खत्म हो जायेगा. ऐसे ही अगर हमारी कोई चीज पवित्र है तो वह फ़ैल जाती है और दूसरे लोगों के जीवन में घुस जाती है.

जैसे विकसित देशों ने मोबाइल बनाया जो आज हर घर में घुस गया है. यहां तक कि दुश्मनों के हाथों में भी आ गया. उन्होंने कंप्यूटर बनाया और यह कंप्यूटर भी पूरी दुनिया में फ़ैल गया. अगर आप अपने घर में पड़ी सभी वस्तुओं पर नज़र घुमाओ तो आपको हर चीज विकसित देशों की बनाई मिलेगी. यहां तक कि हमारा खादी का कपड़ा भी विदेशी मशीनों से बनता है.

जितना हम विदेशियों से नफरत करते हैं उतना ही वो हमारे जीवन के कण कण में समा गए हैं. यानि कि जो चीजें वो बना रहे हैं वो सब पवित्र हैं, तभी वो दूसरों की जिंदगी में घुस गयी हैं जबकि हमारी पवित्र गाय गलियों में कचरा खा रही है. हमारी गाय किसी और की जिंदगी में तो क्या जानी थी, हमारी खुद की जिंदगी में नहीं घुस पाई. जबकि विदेशियों की अमेरिकन गाय हमारे गुरुकुलों में पंखों के नीचे आराम फरमा रही हैं.

हमारी जिंदगी में तो विदेशियों की जर्सी गाय है जिसको हम पवित्र नहीं मानते. दिक्कत यह है कि सब कुछ स्पष्ट होने के बावजूद हम झूठ को पकड़े रहने में अपनी बड़ी शान समझते हैं तो फिर विकास कैसे होगा? जब हम पकड़ते ही झूठ को हैं, वह भी तब जब सारे तथ्य सामने हों.

पवित्र वह चीज है जो स्वतंत्र है. सिर्फ एक स्वतंत्र चीज ही रूपांतरित हो सकती है. जो चीज किसी चीज से जुड़ गई वह रूपांतरित नहीं हो सकती.

जैसे गाय हिंदुओं से जुड़ गई तो गाय समाज के लिए एक समस्या बन गई क्योंकि हिंदुओं की मानसिकता गाय में आ गई. ऐसे ही हर समुदाय की सोच उसके महापुरुष में आ गई इसलिए वह महापुरुष दूसरों के लिए अछूत हो गया.

यह ठीक वैसे है जैसे जब तक कमीज को कोई डालता नहीं तब तक यह पवित्र है क्योंकि तब तक बहुत सी संभावनाएं रहती हैं यानि तब तक इसको कोई भी खरीद सकता है. लेकिन ज्यों ही इसको किसी ने खरीद लिया और इसको डाल लिया तो फिर इसको कोई नहीं डालेगा.

यानि अब कोई संभावना नहीं बची. जब तक दोनों पैर स्वतंत्र है तब तक आप हजारों किलोमीटर चल सकते हो लेकिन ज्यों ही आपने दोनों जूतों को आपस में तसमें से बांध दिया त्यों ही संभावना खत्म हो गई और आप फिर एक कदम भी नहीं चल सकते.

यही कारण हैं धार्मिक समाजों में अन्याय, शोषण, और अराजकता मिलेगी क्योंकि धर्म हमारा स्वतंत्रता को खत्म कर देता है और जीवन में निराशा पैदा करता है.

हमारे मन की दशा इस बात से तय होती है कि हमारी जानकारी का स्रोत क्या है? यानि हमारे विश्वासों की बुनियाद क्या है? हमें उस बुनियाद को चुनौती देनी है.

ऐसे ही आप हमारे सभी महान हस्तियों जैसे गुरुओं, फकीरों और ग्रंथों को देख लो; वो बस एक खास समुदाय तक सीमित हो गए हैं. एक धर्म या जाति का गुरु या महापुरुष दूसरे धर्म में स्वीकार्य नहीं. किसी धार्मिक आदमी के घर में किसी दूसरे धर्म के गुरु की तस्वीर बिल्कुल नहीं मिलेगी. यानि कि ये गुरु और फ़क़ीर फ़ैल नहीं सके, उल्टा ये संकुचित होते जा रहे हैं.

तो यह तय है कि अगर इन गुरुओं, ग्रंथों का विस्तार नहीं हो रहा है तो इसका मतलब ये पवित्र नहीं हैं. इन गुरुओं ने दूसरों के जीवन में तो क्या जाना था, ये तो उन लोगों के जीवन में भी नहीं आये जो दिन-रात इनकी पूजा करते हैं.

मुझे हमारी गाय, हमारे ग्रंथों और हमारे गुरुओं में से बदबू आ रही है. गुरुओं में या गाय में कुछ बुरा नहीं, बुरा है हमारा नज़रिया. वास्तव में हम जिस भी चीज को हाथ लगाते हैं वही अपवित्र हो जाती है.

ऐसा क्यों है? क्योंकि हमारे जीवन में पाखंड है, झूठ है. जैसे कमीज तो कमीज होती है, उसमें तो कुछ अच्छा-बुरा नहीं होता. लेकिन जब हम किसी कमीज को कुछ दिन पहन लेते हैं तो फिर दूसरा इसको नहीं पहनेगा क्योंकि हमारे शरीर के कीटाणु इस कमीज में चले गए हैं.

यानि कि यह कमीज अब दूसरों के लिए अपवित्र है. यही हाल हमने अपने गुरुओं, फकीरों और महापुरुषों का किया है. हमने इनको ऐसा पकड़ा और कुछ ऐसे कर्म किए कि इनको किसी दूसरे के पकड़ने के काबिल छोड़ा ही नहीं. अगर ये पवित्र होते, जैसा कि हम दावा करते हैं, तो इनको जबरदस्ती दूसरों के जीवन में घुस जाना था जैसे मोबाईल घुस गया. तो फिर यह सब क्या है और हम क्या कर रहे हैं?

हम सिर्फ और सिर्फ पाखंड कर रहे हैं. हमने आज तक एक भी ऐसी चीज नहीं बनाई जिसकी बाहर के देशो में मांग हो और ऊपर से सबसे बड़ी शर्म की बात यह है कि हम अपने आपको सबसे ज्यादा महान और आदर्शवादी समझते हैं.

बताओ ऐसी मानसिकता का क्या हल है?

आदर्शवाद क्या है? आदर्शवाद का मतलब है अपनी स्वतंत्रता, निजता, बौद्धिकता को त्याग देना.

आखिर हल क्या है?

वैसे तो इस किताब की हर पंक्ति में एक हल है लेकिन ज्यादातर लोगों को यह नज़र नहीं आएगा क्योंकि लोग उसी तरह के हल मांगते हैं जो आज तक ग्रंथों, किताबों में महापुरुषों के द्वारा दिए गए. इसलिए, हम धार्मिक देशों को यहां कुछ सुझाव देंगे जो इस प्रकार हैं.

1. सबसे पहले नेताओं को नज़र अंदाज करना शुरू करो. आज से हर आदमी यह फैसला करे कि वह किसी नेता की रैली में नहीं जाएगा. आधी देश की समस्याएं उसी दिन खत्म हो जाएंगी अगर सारा देश नेताओं को नकारने लगे. इससे अच्छे नेताओं का सही चुनाव होना शुरू हो जाएगा. क्योंकि बुरे और भ्रष्ट नेता हमेशा भीड़ का फायदा उठाते हैं तो इसमें भी सुधार होने शुरू होंगे.

   अब यह तो सर्वविदित है कि हर आदमी नेताओं को कोसता रहता है लेकिन आज तक हमने अपने स्तर पर कोई एक्शन नहीं लिया. अब एक्शन लेने की जरूरत है. अगर हम सभी नेताओं की रैलियों में जाना छोड़ देंगे तो इनकी अक्ल ठिकाने आ जाएगी.

   एक दोस्त को मैंने कहा कि आप लोगों को उत्साहित करो कि कोई नेताओं की रैलियों में ना जाए तो वह कहने लगा कि यह तो बहुत मुश्किल काम है. कहता, “लोग कहां मानेंगे?” अब जब हम इतना आसान काम नहीं कर सकते तो बाकी सब काम तो बहुत मुश्किल हैं वो हम कैसे करेंगे?

   किसी भी बदलाव के लिए बहुत से आंदोलन चलाने पड़ते हैं, बहुत सी जाने जाती हैं, बहुत सा आपस में संघर्ष होता है और बहुत वक्त भी लगता है. लेकिन नेताओं की रैलियों में ना जाने से बहुत से अच्छे लोग

बाहर निकलकर आएंगे. अभी तक अच्छे लोग डर के मारे आगे नहीं आते थे क्योंकि उनको लगता है कि जनता अंत में अच्छे लोगों का साथ नहीं देती.

यही कारण है सैकड़ों आर.टी.आई. कार्यकर्ता मार डाले गए लेकिन आज तक कोई ढंग से एफआईआर तक नहीं लिखी गई. आज तक कभी किसी हत्यारे को सजा नहीं मिली. यही कारण है कि अच्छे लोग आगे आने से डरते हैं.

मैं सरकार के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं लिखता. क्यों? क्योंकि कोई बीच बाजार में ही पत्थर मार कर मुझे कुत्ते की मौत मार देगा लेकिन किसी को सजा नहीं मिलेगी. मैं अपनी जान खामखां क्यों गंवा बैठूं? हाँ, अगर मुझे लगे कि जनता मेरे साथ है और हर हालत में मेरा साथ देगी तो फिर मैं अपनी जान पर भी खेल जाऊंगा.

फिर अगर मौत भी आती है तो वह कुत्ते की मौत नहीं होगी, बल्कि वह एक शहादत होगी. और अगर हम इतना आसान सा काम भी नहीं कर सकते तो फिर रहने दो. फिर जैसा चल रहा है वैसा चलने दो. बदलाव के लिए इससे कम कीमत और क्या हो सकती है?

यानि कि हमें कुछ करना ही नहीं. हमें धरने नहीं देने, हमें प्रदर्शन नहीं करने, हमें लड़ाई नहीं करनी, हमें विरोध नहीं करना. तो फिर करना क्या है? कुछ भी नहीं करना! बस जो आज तक करते आए हो उसको **ब्रेक** लगानी है. फिर सही क्या है, वह अपने आप होने लगेगा.

फिर अपने आप सही लोग सामने आएंगे. उनको आप एक संकेत तो दो कि आप बदलाव के लिए तैयार हैं.

बहुत से लोग समाजवाद पर दिन-रात चर्चा कर रहे हैं, कुछ लोग पूंजीवाद और लोकतंत्र लोगों को समझा रहे हैं जबकि इनकी अभी कोई जरूरत नहीं. जो समाजवाद लगभग सभी देशों में असफल हो चुका है उसको आप क्यों लोगों को समझा रहे हो?

आप एक जन आंदोलन को जन्म दो और उसके लिए नेताओं की रैलियों का बायकॉट करना मुख्य मुद्दा होना चाहिए. इस एक बिन्दु को लेकर हम जगह जगह सभाएं करें. हर आदमी अपने घर और आस पास लोगों को राजी करे कि कोई भी नेताओं की रैलियों में न जाए.

इससे क्या होगा? इससे यह संकेत मिलेगा कि लोग बदलाव के लिए तैयार हैं. फिर बहुत से संगठनों से मिलकर एक नया मंच बनाया जाए और लोगों को चुनाव में उतारा जाए. अच्छे अच्छे कानून लाए जाएं. संविधान कोई ऐसी चीज नहीं कि इसको लागू किया जा सके. नहीं, संविधान आपके आचरण से पैदा होना चाहिए और यह हमेशा बदलता रहना चाहिए.

सारा देश खंडित है, विभाजित है. सबको एक करने के लिए एक सामूहिक एक्शन दीजिए. जांचिए, क्या ये सभी लोग एक बात पर सहमत हो सकते हैं या नहीं? अगर लोग एक छोटी सी बात पर भी सहमत नहीं होते तो फिर कोई उम्मीद नहीं. फिर ऐसे ही चलेगा और इसको ऐसे ही चलने दो.

ऐसी अवस्था में मैं तो कुछ नहीं करूंगा. मैं क्यों अपनी ऊर्जा और समय गवाऊं जब लोग एक छोटा सा एक्शन लेने को तैयार नहीं और खास करके एक ऐसा एक्शन जिसमें कुछ भी नहीं बिगड़ता. जब तक लोगों का व्यवहार नहीं बदलेगा, तब तक आप चाहे समाजवाद ले आओ या पूंजीवाद ले आओ कोई फर्क नहीं पड़ेगा.

2. एक और बहुत बढ़िया सुझाव. आगे से आने वाले हर चुनाव में नोटा का बटन दबाओ. ऐसा करके हम किसी को चुनाव में विजयी होने से तो नहीं रोक सकते लेकिन यह नेताओं के लिए एक खतरे की घंटी होगी. और यह अच्छे लोगों को ललचाएगा कि वो रण में कूद पड़ें.
3. तीसरा सुझाव यह है कि बच्चों पर बचपन में ही धर्म/ग्रंथ न थोपा जाए. बच्चे को एक खाली स्लेट की तरह पनपने दें. बड़ा होकर अगर उसको धर्म की जरूरत होगी तो वह अपने विवेक से इसे चुन लेगा. वैसे भी हमने इस धर्म-कर्म में से आज तक कुछ कमाया तो है नहीं.

   इसलिए, इस धर्म के **रूल** को भी तोड़कर देखना चाहिए. क्या अपने बच्चों के ऊपर जबरन कोई चीज थोपना सही है? क्या उनको मानसिक गुलाम बनाना सही है? इस पर तो कानून बनना चाहिए.

4. एक और बहुत कीमती सुझाव यह है कि हम अपने घर में दूसरे धर्मों के गुरुओं की फोटो भी लगाएं. इससे हमारे मन पर धर्म की जकड़न कम होने लगेगी. इससे नफरत खत्म होगी प्यार बढ़ेगा. एक से जुड़ना ही पाप है. जिसको पढ़ लिया उसको वहीं छोड़ दो और आगे निकल जाओ.
5. एक और जो अहम बात है और वह यह है कि हम हमेशा देखें कि मेरे दिल में कौन है? अब दिल में तो कोई और है लेकिन शादी किसी और से हो गई. अगर इस तरह की परिस्थिति है तो हम कभी खुश नहीं हो सकते.

   आप कहोगे कि अब क्या हो सकता है? अब भी बहुत कुछ हो सकता है. मान लो आपका कुछ नहीं हो सकता तो कम से कम हम अपने बच्चों को तो एक सही इंसान से मिला दें. हमारी दिक्कत यह है कि हम हर जगह गलत चीजों से जुड़े हैं.

6. विकल्पों पर काम करें ताकि हमारा हाथ सही चीज तक पहुंच सके. सही क्या है हम पहले ही झटके में कभी नहीं जान सकते. सही ग्रंथ तक पहुंचने के लिए दो, तीन ग्रंथ आजमाने होंगे. विकल्पों को आजमाए बिना हम सही चीज तक नहीं पहुंच सकते.
7. हमेशा आगे की तरफ देखें. ऐसे कीर्तनों, प्रवचनों, भजनों, पाठ-पूजा आदि से दूर रहें जो अतीत का गुणगान करते हैं. इनको हमने खूब करके देख लिया. कोई सकारात्मक परिणाम तो आया नहीं. इन चीजों को दो साल के लिए **ब्रेक** दे दो. अगर मजा नहीं आया तो इनको दोबारा आकर पकड़ लेना. ये चीजें आपको वहीं उपलब्ध मिलेंगी क्योंकि इनको कोई चुराने वाला नहीं. आपके सिवा ये किसी और की जरूरत हैं नहीं.

   हमेशा आगे की सोचो. जो हो गया हम उसका कुछ नहीं कर सकते. हम सिर्फ वर्तमान में रहकर एक अच्छा भविष्य पैदा कर सकते हैं. महत्व आने वाले कल का है, जो बीत गया उसका कोई महत्व नहीं.

8. आज की रट्टे की शिक्षा का बहिष्कार करें. बच्चों से ज्यादा अंक लाने की उम्मीद न रखें. सरकार से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की मांग करें.
9. जीवन में कोई एक ऊंचा लक्ष्य जरूर रखें. अपने आपको सिर्फ नौकरी या व्यवसाय तक ही सीमित न रखें. जब हम एक बड़े लक्ष्य पर काम करते हैं तो बहुत सी पुरानी परम्पराएं, धारणाएं, मान्यताएं अपने आप धराशायी हो जाती हैं. एक दार्शनिक ने सही कहा है कि अगर आप वही करते रहते हो जिसकी आपसे उम्मीद की जाती है तो आप एक गुलाम हो.
10. अकेला खड़ा होना सीखें. किसी का सहारा मत ढूंढे. जीवन को निजी और प्रत्यक्ष रूप से जियें. हमारा जीवन के साथ सीधा संपर्क होना चाहिए तभी हमारी एक निजी सोच पनपेगी. दो साल के लिए जीवन के सारे बिचौलिये जैसे गुरु, फकीर, देवता, पाखंड हटा दो.

11. शादी में बच्चों को खुद फैसले लेने दें. हो सके तो दो साल के लिए उनको पहले लिव-इन-रिलेशनशिप में रहने के लिए प्रोत्साहित किया जाए. उन्हें भी अपने जीवन में आजादी से फैसले लेने का पूरा हक है.
12. दो साल के लिए शादियां बिना दहेज के करें और शादियों पर बिल्कुल न पैसा खर्च किया जाए. कर्जदारी और उसके साथ बहुत सी और समस्याएं हल होंगी. सोच में सुधार होगा.
13. आपस मे सभी समुदाय लड़ना बंद करे. आपको समस्याओं से लड़ना है. दूसरे समुदाय की बजाय खुद के समुदाय में कमियां देखे. इससे नफरत कम होगी और आपको जीवन में बहुत से बेहत्तर विकल्प नजर आने लगेंगे.

अब जो मैंने तेरह बिन्दु दिए हैं इनमें से बारह तब हो पाएंगे अगर हम पहले सबसे नंबर एक वाले बिन्दु पर काम करते हैं. यानि कि अगर हमनें नेताओं को नकारनें से शुरुआत नहीं की तो फिर हम बाकी के किसी मुद्दे पर काम नहीं कर पाएंगे. हमें इतनी तो समझ होनी ही चाहिए ताकि हम सही चुनाव कर सकें जिससे हमारे परिवार और देश की तरक्की हो सके?

ये कुछ बिन्दु हैं जो सरकार बनने से पहले हर कोई कर सकता है. ये सूची कोई आखिरी सूची नहीं अपितु कुछ कदम हैं जो शुरुआती दौर में लिए जा सकते हैं. इनमें बहुत सी बातें और जोड़ी जा सकती हैं और इनको करने के लिए किसी पूंजीवाद, समाजवाद या लोकतंत्र की जरूरत नहीं.

जैसे अगर आप सक्षम हैं, पढ़े-लिखे हैं तो आप अपने भाइयों की मदद करो. उनके बच्चों की पढ़ने-लिखने में मदद करो. इसमें तो किसी समाजवाद, पूंजीवाद या लोकतंत्र की जरूरत नहीं. आपके पड़ोस में किसी के साथ अगर कोई बेइंसाफी होती है तो उसके साथ खड़े हो जाओ. बताओ इसमें कौन से समाजवाद, पूंजीवाद या लोकतंत्र की जरूरत है?

आप कुछ लोग मिलकर एक सर्वे एजेंसी बना सकते हैं. आप तरह तरह के मुद्दों पर सर्वे करके सरकार को फीडबैक दो. इसमें तो किसी समाजवाद या पूंजीवाद को समझने की जरूरत नहीं. वैसे भी तो आप खाली बैठे हो तो क्यों न कोई ना कोई काम हाथ में लिया जाए. क्या सरकारी नौकरी मिलना ही जीवन का आखिरी सत्य है?

सारे काम जो करने हैं वो इसी तरह के निहायत ही आसान काम हैं परंतु जो हम आज तक करते आए हैं वो निहायत ही मुश्किल हैं.

जैसे आपने देखा होगा लोग जाति, धर्म, संप्रदाय को बहुत महत्व देते हैं लेकिन लोग सरकार से अच्छी शिक्षा की मांग नहीं करते. लोग मूलभूत समस्याओं के बजाय भजनों, कीर्तनों, आडंबरों में लीन हैं और ये सब चीजें जीवन को जटिल करती हैं.

मैंने देखा है कि भारत में लोगों ने बहुत से ग्रुप या संस्थाएं बनाए हुई हैं और वो दिन-रात यही चर्चा कर रहे हैं कि समाजवाद सही है या पूंजीवाद? नास्तिक सही है या आस्तिक? जबकि यह तो कोई मसला ही नहीं. मसला है- आप और हम एक नई शुरुआत कैसे करें?

और एक नई शुरुआत के लिए कौन सा एक ऐसा कदम हर आदमी को दिया जाए जो सभी लोग कर पाएं. सबसे सही और आसान कदम यही है कि सभी नेताओं और धार्मिक गुरुओं का बहिष्कार किया जाए. लोगों के बीच जाइए और उनको प्रोत्साहित करें. उनको बताएं कि कैसे उनका और उनके बच्चों का वजूद खतरे में है.

अब सरकार बनने के बाद क्या करना है वह बाद की बात है. जब सरकार बनने के आसार नज़र आयें फिर हम सरकार बनने के बाद क्या करेंगे वो चीज लोगों के सामने रखेंगे. पहले यह जांचा जाए कि क्या जनता जाति-धर्म विहीन राजनीति के लिए तैयार है या नहीं.

अब विरोध तो भ्रष्टाचार, अत्याचार, शोषण, साम्प्रदायिकता, बेरोजगारी आदि का भी करना है लेकिन ये सारे विषय बहुत जटिल और मुश्किल हैं. इन पर अगर लोगों को प्रेरित करोगे तो बहुत कड़ा संघर्ष करना पड़ेगा क्योंकि बहुत से प्रदर्शन करने पड़ेंगे, बहुत से धरने भी देने पड़ेंगे. बहुत हिंसा भी हो सकती है.

पहले लोगों को थोड़ा आसान काम दो जो वो कर पाएं जैसे नेताओं की रैलियों का बहिष्कार करना. इसमें कुछ भी नहीं जाता. आपको भी सिर्फ एक जन आन्दोलन चलाना है. इसके लिए एक टीम बनाओ और बहुत सारे संगठनों से तालमेल बनाएं.

जब नतीजे सही आएंगे तो यही नतीजे लोगों को और बड़े कदम लेने के लिए प्रोत्साहित करेंगे. याद रहे, हम भाषणों से नहीं, अच्छे परिणामों से प्रोत्साहित होते हैं. सवाल यह है कि क्या हम एक मूक क्रांति को जन्म दे सकते हैं जिसमें एक बूंद भी खून की न बहे?

इस छोटे से कदम के अंदर अपार संभावनाएं छुपी हैं. आप एक दिन एम.एल.ए., मंत्री और यहां तक कि देश के प्रधानमंत्री भी बन सकते हो. आप अपने आप को एक छोटी सी सरकारी नौकरी तक क्यों सीमित रखे हुए हैं जबकि संभावनाएं तो अपार हैं?

आज आप दोनों हाथ फैलाकर एक सरकारी नौकरी मांग रहे हो. लेकिन आप नौकरी मांगने के बजाय नौकरी देने वाले क्यों नहीं बनते? आप कोई बड़ा लक्ष्य क्यों नहीं रखते, मंत्री या प्रधानमंत्री क्यों नहीं बनते और लोगों को नौकरी देने वाले क्यों नहीं बनते?

दिक्कत यह है कि लोग सरकारों से उम्मीद रखते हैं कि सरकार बहुत बड़ा परिवर्तन ला दे जबकि यह संभव नहीं. परिवर्तन लोगों द्वारा ही लाया जाना है और लोग मेहनत करने से कतराते हैं. वो सालों साल बेरोजगार बैठे रहेंगे लेकिन वो कोई नया काम हाथ में नहीं लेते.

आप अंधविश्वास, बेरोजगारी, अशिक्षा पर खूब गोष्ठियां करो. इसमें तो कुछ लगता नहीं लेकिन संभावनाएं अपार हैं. जितनी भी चारों और समस्याएं हैं वो सभी हमारे लिए एक अवसर हैं. लेकिन हमारे नौजवान पढ़-लिखकर सालों साल खाली घूमते फिरेंगे लेकिन किसी चुनौती को स्वीकार नहीं करते.

उनके लिए नौकरी ही एक आखिरी विकल्प बचा है. आंट्रप्रन्योरशिप कहीं दिखाई नहीं देती. जो काम हाथ लगे उसी को पकड़ लो. खाली समय मत गवाएं. जीवन का एक एक पल कीमती है. हाथ पर हाथ रखकर इंतजार मत करो कि सरकार नौकरी देगी तभी आपका उद्धार होगा.

विकल्पों पर काम करें और जिंदगी में संघर्ष को अंगीकार करें. हो सके तो धार्मिक पाखंडों, रूढ़ियों और अंधविश्वासों से दूर रहें. सरकार से फ्री की चीजों की उम्मीद न रखें बल्कि सरकार पर अच्छी और आधुनिक शिक्षा के लिए दबाव बनाएं.

अब सोचो, देश में योग के हजारों ट्रेनर होंगे लेकिन बाबा रामदेव ने योग को इस अनोखे ढंग से पेश किया कि आज उनका पूरी दुनिया में नाम है. यह है आंट्रप्रन्योरशिप. इसके बिना देश आगे नहीं बढ़ पाएगा क्योंकि हर आदमी को नौकरी तो नहीं दी जा सकती. ये जो चारों तरफ इतना अंधविश्वास है, बेरोजगारी है, शोषण है, नफरत है, गरीबी है, पाखंड है यह सब हमारे लिए छुपी हुई संभावनाएं हैं.

Our social sites:

Website: -
www.breaktherule.co

YouTube: -
www.youtube.com/c/breaktheruleJogaSingh

Facebook page: -
www.facebook/breaktherule.co

Telegram: -
t.me/breakrule_bTr

E-Mail: -
info@breaktherule.in

लेखक के बारे में

जोगा सिंह एक अद्भुत मिशन ‘ब्रेक द रूल’ के संस्थापक हैं और पेशे से भारत में एक महाविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं. जोगा सिंह ने व्यक्ति और समाज के बीच के संबंध का बहुत गहन अध्ययन किया और उन कारणों पर प्रकाश डाला जिनकी वजह से ज्यादातर लोग एक अधूरा जीवन जीकर चले जाते हैं.

इनका जीवन सदैव संघर्षों से भरा रहा. शुरूआती दिनों में इन्होंने स्कूल में अध्यापक का कार्य किया. अपने निर्भीक और सवाल उठाने वाले स्वभाव के कारण किसी भी एक स्कूल में ये ज्यादा दिन टिक नहीं पाए.

कई नौकरियां छूटी और कई मिलीं. इन्होंने आर्थिक तंगी का भी सामना किया और ख़राब सेहत का भी, लेकिन फिर भी कभी हार नहीं मानी. हमेशा नए विकल्पों को आजमाते हुए ये जीवन में आगे बढ़ते ही गये.

और इसी संघर्ष से जन्म हुआ 'ब्रेक द रूल' का जो आज एक जन आंदोलन के रूप में समाज को बदल रहा है.

'ब्रेक द रूल' को सबसे पहले इन्होंने अपने जीवन में आजमाया और आर्थिक तंगी से निकल कर आर्थिक सम्पन्नता को उपलब्ध किया. ख़राब सेहत से निकल कर ऐसे स्वास्थ्य को उपलब्ध किया जिस पर डॉक्टरों को भी आश्चर्य है.

अपने जीवन में 'ब्रेक द रूल' का ये चमत्कार देखने के बाद इन्होंने समाज का सामाजिक और मनोवैज्ञानिक नजरिये से विश्लेषण किया और पाया कि हर व्यक्तिगत और सामाजिक समस्या का हल 'ब्रेक द रूल' है.

इनका कहना है कि व्यक्ति के लिए सबसे जरूरी यह जानना है कि वह वास्तव में चाहता क्या है और 'ब्रेक द रूल' यह जानने का एक सक्षम माध्यम है. एक बार व्यक्ति को यह स्पष्ट हो जाए कि वह क्या चाहता है तो अगला कदम है विकल्पों पर काम करना. विकल्पों को आजमाना 'ब्रेक द रूल' फोर्मुले का आधारभूत हिस्सा है.

'ब्रेक द रूल' हमें सीमाओं का अतिक्रमण कर के सीमाओं से पार जाना सिखाता है. जोगा सिंह जी का कहना है कि सीमाओं के पार जा कर हम ब्रह्माण्ड की अनंत रचनात्मक शक्ति से जुड़ जाते हैं. इस शक्ति से जुड़ कर हम वह सब कुछ अपने जीवन में साकार कर सकते हैं, जो हम जीवन में पाना चाहते हैं.